द्वात्रिंश सर्ग ।

रोला ।

डारन माहिँ छिप्यो कपि बिज्जु-रासि सम पिङ्गल ।
सेत बसन धारी लखि भइ मन में सिय चंचल ॥ १ ॥
ताने लख्यो बिनीत और प्रियबादी बानर ।
फुल्ल असोकरासि सम तप्त हेम सम दृग-धर ॥ २ ॥
पुनि लखिके बानरबर कों बिनीत के सम थित ।
जनक-कुमारी सोंचन लागीं ह्वै अति बिसमित ॥ ३ ॥
देखि सकत न सोंचि मन बहुरि मोह बस आई ।
अहो दुरासद भीम रूप यह कपि दरसाई ॥ ४ ॥
करुना अरु भय-मोहित सिय अति रोवन लागी ।
राम राम हा लछिमन इमि पुकारि दुख-पागी ॥ ५ ॥

बरवै ।

मन्द मन्द सिय सहसा रोदन कीन ।
लखि बिनीत सम आयो सुकपि प्रवीन ॥ ६ ॥
जनक-कुमारी तब मन कियो बिचार ।
सपनोहीं यह अपने जिय निरधार ॥ ७ ॥

हरिगीतिका ।

वह भग्न हनु-मुख लखत दीरघ कीस-बदन समान जो ।
कपि बीर मारुत-सुतहिँ निरख्यो बुद्धिमान-प्रधान जो ॥
तहँ निरखि ताकों डरि परम मृतप्राय सीता ह्वैगई ।
चिर काल पै लहि चेतना दीरघनयनि सोंचत भई ॥ ८ ॥
निरख्यो भयङ्कर सपन सास्त्र निसेध कपिहिँ बतावहीं ।
हम राम लछिमन अरु पिता की कुसल अबै मनावहीं ॥

यह सपन नहिँ दुख-सोक-पीड़ित मोहिँ न निद्रा आवती।
तिन पूर्न-ससि-मुख राम सोँ मै बिछुरि नहिँ सुख पावती ॥९॥
मैँ राम रामहिँ बुद्धि सोँचत राम सदा उचारती।
सुनती कथा अनुरूप ताके ओर सोई निहारती॥
सोँचत मनोरथ यह अहै पै बुद्धि पुनि तरकन करै।
प्रगटत न वह का हेतु पै सुस्पष्ट बानी सुनि परै॥ १० ॥

दोहा।

इन्द्र स्वयम्भू वाक-पति अग्निहिँ मम परनाम।
होइ न कपि-बच अन्यथा साँचहि होइ तमाम ॥ ११ ॥

इति द्वात्रिंशः सर्गः।

त्रयस्त्रिंश सर्ग।

रोला।

ता तरु तेँ विद्रुम सम मुखधर सुकपि उतरिकै।
होइ विनीत दीन ढिग आइ दन्डवत करिकै ॥ १ ॥
महातेज हनुमान पवन-सुत तब सीता सोँ।
हाथ जोरिकै बोलन लाग्यो मधुर गिरा सोँ ॥ २ ॥
"कमलनयनि तू धरे मलिन कौसेय बसन तन।
ठाढ़ी क्योँ इत द्रुम-साखा को करि अवलम्बन ॥ ३ ॥
का कारन तुव नैन सोक को नीर बहत है।
नीरज-पत्रन सोँ जल-बिन्दु जथा टपकत है ॥ ४ ॥
देव अदेव नाग गन्धर्व निसाचर-गन की।
है तू कोऊ सुन्दरि किन्नर वा यच्छन की ॥ ५ ॥
कै तू कोऊ रुद्र वा मरुतन की इत आई।
वा बसु-गन की मोहिँ देवता परत लखाई ॥ ६ ॥
देवालय सोँ गिरी चन्द सोँ बिछुरि गई कै।

गुनाधिका रोहिनि तारन मैं प्रभामई कै ॥ ७ ॥
निज स्वामिहिँ सुन्दरी त्यागि रिसि वा सोकहिँ भरि।
है कल्यानि अरुन्धति कै वसिष्ठ कोपित करि ॥ ८ ॥
कै भामिनि तुव पिता पुत्र भ्राता अथवा पति।
त्यागि गयो या लोकहिँ जाके हित तू सोचति ॥ ९ ॥
रोदन पुनि पुनि साँस लेन अरु भू-परसन सों।
देव-पत्नि समुझत न तोहिँ रामहिँ सुमिरन सों ॥ १० ॥
तेरे ये सामुद्रिक तन-लच्छनन निहारी।
समुझौं नरपति-पटरानी अरु राज-कुमारी ॥ ११ ॥
जनस्थान सों जदि बल सों रावन हरि लाई।
तू सीता है तो पूछत मोहिँ देइ बताई ॥ १२ ॥
जिमि तुव दैन्य अनूपम नारी-रूप लखाई।
तापस-बेस राम-पटरानी अवसि जनाई" ॥ १३ ॥
सुनि कपि-बैनहिँ राम-कीरतन-आनँद-सानी।
बोली सीता द्रुम पै थित हनुमत सों बानी ॥ १४ ॥
"जो बसुधा पैं नृपसिंहन मैं मुख्य कहाए।
दसरथ-पुत्र-बधू मैं जिन अरि सेन नसाए ॥ १५ ॥
अहौं महात्मा मिथिला-पति की सुता दुलारी।
सीता मेरो नाम अहौं रघुबर की नारी ॥ १६ ॥
द्वादस बरसन लौं राघव के घर मैं बसिकै।
पूरि चित्त के कामन मानुस-भोग बिलसिकै ॥ १७ ॥
तेरह बरस गए राघव कों राज देन हित।
सह उपरोहित नृपबर करन चह्यो अभिसेकित ॥ १८ ॥
राघव की अभिसेक-तयारी जबहिँ निहार्‌यो।
कैकेयी तब निज स्वामी सों बचन उचार्‌यो ॥ १९ ॥

जल न ग्रहन करिहौं अरु करिहौं कबहुँ न भोजन।
होय राम-अभिसेक अन्त तौ मेरो जीवन ॥ २० ॥
नृप-सत्तम जो बैन प्रीति सों तुमने भाष्यो।
राम जाहिं बन चाहिय तुम्हहिं बचन निज राख्यो ॥ २१ ॥
सोंचि दियो अपनो बर सत्यबचन वह नरपति।
भयो मूरछित सुनि ता बचन क्रूर अप्रिय अति ॥ २२ ॥
ज्येष्ठ जसस्वी निज सुत सों तब वृद्ध नृतिपबर।
राजहिं जाचन कीन होइ थित सत्य धरम पर ॥ २३ ॥
वह श्रीजुत पितु-बैनहिं अभिसेकहु सों अति प्रिय।
कीनो अङ्गीकार जु ठान्यो प्रथमहिं निज जिय ॥ २४ ॥
दैके लेहिं न सत्यहि कहैं अनृत नहिं भाषैं।
प्रान जाइ पै राम सत्यबल निज पन राखैं ॥ २५ ॥
तबै महाजस त्याग्यो महामूल निज बसनन।
मन सों त्यागि राज कीनो कैकयि के अरपन ॥ २६ ॥
तिनके सङ्ग चली मैंहूँ तुरतहि कानन मैं।
तिन बिनु स्वर्ग-बासहू रुचत न है मम मन मैं ॥ २७ ॥
तब बड़भाग सुमित्रानन्दन मित्रानन्दन।
कुस-चीरहिं धार्‌यो भ्राता सह चलिबे हित बन ॥ २८ ॥
इमि हम लोगन ने आदेस मानि नर-पति को।
पैठे बिनु देखे बन माहिं गहन है अति जो ॥ २९ ॥
तिन ओजस्वी की पत्नी मैं बसी आइ बन।
तहँ तें हरिलायो मोहिं दुष्ट निसाचर रावन ॥ ३० ॥
दोय मास लौं कियो अनुग्रह मम जीवन पै।
त्यागूँगी निज जीवन अब तिनके बीतन पै" ॥ ३१ ॥

इति त्रयस्त्रिंशः सर्गः।

चतुस्त्रिंश सर्ग ।

दोहा

इमि सीता के वचन सुनि मारुत-सुत हनुमान ।
दुख सों दुःखिनि सों करयो सान्त्वन-बचन बखान ॥ १ ॥

रोला

"लहि राघव सन्देस दूत मैं हूँ इत आयो ।
देवि कुसल हैं राम कुसल तुम सों कहवायो ॥ २ ॥
ब्रह्मअस्त्र-विद वेद-विदन मैं अहैं जौन बर ।
कह्यो कुसल है तुम सों दासरथी वह रघुबर ॥ ३ ॥
तुमरे पति के प्रिय अनुचर तेजस्वी लछिमन ।
सोक-तप्त कीनो नवाइ सिर तुव अभिवादन" ॥ ४ ॥
वह देवी तिन नरसिंहन की कुसल सुन्यो जब ।
ह्वै पुलकित सब गात कह्यो मारुत-सुत सों तब ॥ ५ ॥
"मोहिं यह कल्यानी लौकिक गाथा मन भावै ।
सत बरसहु पै जीवित नर आनन्दहिं पावै" ॥ ६ ॥
उपजी अद्भुत प्रीति मिलन सों तिनके ता छन ।
ह्वैके पुनि बिस्वस्त परस्पर लागे बोलन ॥ ७ ॥
इमि बचनन को सुनि कै सोक-तप्त सिता के ।
मारुत-सुत हनुमान लग्यो आवन ढिग ताके ॥ ८ ॥
आवन लाग्यो वह हनुमान निकट मैं ज्यों ज्यों ।
ताको रावन अनुमानन लागी सिय त्यों त्यों ॥ ९ ॥
धिक मोहिं जो यासों जिय की सब बात कह्यो है ।
बेस बदलि कै सोइ दसकन्धर इत आयो है ॥ १० ॥
त्याग्यो ना असोक-डारहिं मन माहिं सोक भरि ।
ता नीचे धरनी पै बैठि गई वह सुन्दरि ॥ ११ ॥

सीता सों पुनि महाबाहु कपि लाग्यो बोलन।
पै डरिकै सिय ता दिसि पुनि न कीन अवलोकन ॥ १२ ॥
ससिबदनी सिय ताहि दन्डवत करत निहार्यो।
लै दीरघ उच्छ्वास बहुरि मृदु बचन उचार्यो ॥ १३ ॥
"माया धारी दसकन्धर आपहि तूजो है।
देत मोहिं सन्ताप बहुरि यह तोहिं न सोहै ॥ १४ ॥
छाँड़ि आपने रूपहिं धरिकै परिब्राजक-तन।
जनस्थान में लख्यो अहै सोई तू रावन ॥ १५ ॥
कामरूप निसिचर उपवास-कृसित भइ मोकों।
बहुरि बहुरि सन्ताप देन सोभित नहिं तोकों ॥ १६ ॥
जो सङ्का मैं कीन उचित अथवा सो नाहीं।
तुव दरसन सों उपजत प्रीती मम मन माहीं ॥ १७
जो तू राम-दूत तौ होवै तेरो मङ्गल।
पूछत हूँ अब तोसों प्यारी राम-कथा कल ॥ १८ ॥
हे कपि मम प्रिय राघव के बखान अब गुन-गन।
हरत बेग जिमि नदी-कूल तिमि तू मेरो मन ॥ १९ ॥
अहो सपन को सुख कैसो जासों हरि आई।
मोहिं राम सों भेज्यो बानर परत लखाई ॥ २० ॥
सपनहुँ मैं जदि बीर राम लछिमनहिं बिलोकों।
दुख न लहौं सपनहुँ करि डाह लखात न मोकों ॥ २१ ॥
नाहिं सपन यह जानत सपन माहिं लखि बानर।
लहि न सकत अभ्युदयहिं मम अभ्युदय भयो पर ॥ २२ ॥
वायु-बिकार भयो कै मोह भयो है मम चित।
कै मृगतृष्णा कै मैं होई गई उन्मादित ॥ २३ ॥

अथवा नहिं उन्माद मोह उन्माद-जनित नहिं ।
हूँ सचेत मैं श्रोर रही इत देखि बानरहिं ॥ २४ ॥
इमि बहु भाँति बलाबल सिय अपने मन आन्यो ।
निसिचर-कामरूपता सों कपि रावन जान्यो ॥ २५ ॥
वह सुन्दरी जानकी इमि अपने मन मैं गुनि ।
मारुत-सुत कपिबर सों नेकहु नहिं बोली पुनि ॥ २६ ॥
तब कपिबर सीता को यह निसिचय निहारिकै ।
कियो अनन्दित कर्न-सुखद बैनहिं उचारिकै ॥ २७ ॥
" दिनकर सम तेजस्वी लोकहिं प्रिय जिमि हिमकर ।
देव धनाधिप के सम सब लोकन के नृपबर ॥ २८ ॥
बिक्रमवान परम जिमि महाजसी कमलापति ।
मधुर-सत्यवादी जैसे आपहिं वाचस्पति ॥ २९ ॥
सुभग सुरूपवान अति मूर्तिमान जिमि मनमथ ।
उचित क्रोध करि हनत जगत मैं श्रेष्ठ महारथ ॥ ३० ॥
सुखी जगत जा भुज-छाया-अवलम्ब पाइकै ।
मृग बनि ऐसे रामहिं आस्रम सों हटाइकै ॥ ३१ ॥
सूने तोहिं हरि आन्यो ताको फल पैहै अब ।
कोप-छुटे दहकत पावक सम सर लगि हैं जब ॥ ३२ ॥
जिनसों रावन अबहिं जात रन मैं बिनसायो ।
तिनको भेजो दूत अहों मैं तुव ढिग आयो ॥ ३३ ॥
तुव बियोग-दुख-आरत कुसल कह्यो है तोसन ।
महातेज लछिमनहुँ सुमित्रा-आँनद-बरधन ॥ ३४ ॥
करि प्रनाम तोसों मोहिं कुसल कहन को भाष्यो ।
कपि सुग्रीव नाम जेहि राम सखा करि राख्यो ॥ ३५ ॥
कह्यो कुसल तोसों जो मुख्य कपिन को नृपबर ।

सुमिरत तोहिं नित्यहि सुग्रीव लखन सह रघुबर ॥ ३६ ॥
बच्यो भाग सों परि निसाचरिन बस तुव जीवन।
तुरत महारथ राम लखन करिहैं अवलोकन ॥ ३७ ॥
लखिहैं कपिबर महापराक्रम सुग्रीवहिं अपि।
मैं सुग्रीव सचिव हूं हनूमान नामी कपि ॥ ३८ ॥
प्रविस्यो लङ्का नगरी माहिं उदधि लङ्घन करि।
परम दुष्ट या दसकन्धर के सीस चरन धरि ॥ ३९ ॥
करि निज बल-आसा इत आयो तोहिं लखन मैं।
देवि न मैं वह जो तू समुझत है निज मन मैं ॥ ४० ॥

बरवै।

करिकै त्यागन यह निज मन को भाव।
मम बानी के ऊपर स्रद्धा लाव" ॥ ४१ ॥

इति चतुस्त्रिंशः सर्गः।

पंचत्रिंश सर्ग।

रोला।

सुनि सीता कपिबर सों इमि रघुबीर-कहानी।
कहन लगी मन धीरज धरिकै मधुरी बानी ॥ १ ॥
"किमि तुव राघव-मिलन जानतो किमि लछिमन को।
कैसे भयो समागम नर अरु बानर-गन को ॥ २ ॥
हे बानर जे बरने राम लखन के चिह्न।
तिनको पुनि कहु जासों सोक लहै नहिं मो मन ॥ ३ ॥
कैसो तिनको रूप गठनि पुनि तन की कैसी"।
ठवनि जङ्घ अरु भुज की राम लखन की कैसी ॥ ४ ॥

हनूमान मारुत-सुत इमि सीता-बानी सुनि।
करिबे लग्यो जथारथ राघव को बखान पुनि ॥ ५ ॥
"तेज भानु सम और छमा बसुधा सम जाकी।
बुद्धि बृहस्पति सम कीरति मघवा सम जाकी ॥ ६ ॥
लखे जु राम और लछिमन के तन के चिन्हन।
सुनु बिसालनैनी मैं तिन्है करत अब बरनन ॥ ७ ॥
जानतहू तू कमलनयनि सिय पूछन चाहै।
निज पति अरु लछिमन की ठवनहिँ जानन चाहै ॥ ८ ॥
कमलनयन श्रीरामचन्द्र पूरन ससि आनन।
रूप और दाच्छिन्य जुक्त कीनो तन धारन ॥ ९ ॥
जीवलोक के रच्छक अरु रच्छक स्वजनन के।
निज वृत्तन के रच्छक और सकल धर्मन के ॥ १० ॥
तीनलोक-मर्जादा-कारक और बिधायक।
भामिनि चारहु बर्नन के त्राता रघुनायक ॥ ११ ॥
उपकारज्ञ साधु के अर्चिष्मान सुअर्चित।
प्रचारज्ञ कर्मन के ब्रह्मचर्ज ब्रत मैं थित ॥ १२ ॥
राजनीति मैं निपुन परम महिदेव-उपासक।
तपी सील-सम्पन्न बिनीत ज्ञान उर धारक ॥ १३ ॥
यजुर्वेद-ज्ञाता सुवेद-विद जन सों पूजित।
धनुर्वेद वेदन वेदाङ्ग माहिं पुनि निष्ठित ॥ १४ ॥
गूढ़जत्रु दृग अरुन राम सुविदित सब लोगन।
विपुल कन्ध दीरघ भुज कम्बुग्रीव सुभानन ॥ १५ ॥
परम प्रतापी स्निग्धबरन बोलत दुन्दुभि स्वन।
स्यामबरन राजत सम अरु बिभक्त सुन्दर तन ॥ १६ ॥

* तीन लम्ब थिर तीन तीन सम तीन समुन्नत।
तीन स्निग्ध गम्भीर अरुन पुनि तीन विराजत ॥ १७ ॥
† चार ह्रस्व त्रिबलीधर त्रिनत त्रिरेख सीसधर।
चतुकिष्कु चतुलेख चतुष्कल चार बराबर ॥ १८ ॥
‡ द्वन्द चतुर्दश सम तीखेरदचार चतुर्गति।
पंचस्निग्ध हनुनास अधर अँग आठ दीर्घअति ॥ १९ ॥

---

* तीन लम्ब=तीन अङ्ग लम्बे। प्रलम्बायस्य सधनी त्रयो भूमुष्क बाहवः। भौहें अन्ड-कोष और बाहु जिसके लम्बे होते हैं वह धनी होता है। थिर तीन=उरुश्च मणिबन्धश्च मुष्टिश्च नपते स्थिराः। जङ्घा गट्टा और मुष्टि ये तीन राजाओं के स्थिर होते हैं। तीन सम=केशाग्रं वृषणं जानु समं यस्य स भूपतिः। केशों के अग्र भाग घुटने और अन्डकोष जिसके सम होते हैं वह नृपति होता है। तीन समुन्नत=नाभ्यन्तः कुक्षि वक्षोभिरुन्नतैः क्षितिपो भवेत्। नाभि का मध्यभाग पेट और छाती जिसके उन्नत हों वह नृप हो। तीन स्निग्ध=स्निग्धा भवन्ति वै येषां पादरेखाः शिरोरुहाः। तथा लिङ्गमणिस्तेषां महाभाग्यं विनिर्दिशेत्। पैर की रेखाएँ मस्तक के केश और शुक्र ये तीन जिनके स्निग्ध हों उन्हें महाभाग्य कहना चाहिए। तीन गम्भीर=स्वरेगतौ च नाभौ च गंभीरस्त्रिषु शस्यते। स्वर गति और नाभि के गम्भीरता की प्रशंसा है। तीन अरुन=नेत्रान्त नख पाण्यङ्घ्रि स्तलैस्ताम्रस्त्रिभिः सुखी। नेत्रों के कोने नख और हाथ पैर के तरवे जिसके लाल हों वह सुखी होता है ॥ १७ ॥

† चार ह्रस्व=ग्रीवप्रजननं पृष्ठं ह्रस्वेजङ्घेचपूजिते। गला पीठ जङ्घ और लिङ्ग चार जिनके नाटे हैं। त्रिबलीधर=जिनके उदर और कंठ दोनों में त्रिबली हैं। त्रिनत=पैर के तरवे तरवों की रेखाएँ और स्तनाग्र ये तीन जिनके घुसे हुए अथवा डूबे डूबे हैं। त्रिरेख सीसधर=जिनके मस्तक पर तीन रेखाएँ हैं। चतुष्किष्कु=चौबीस अङ्गुल के प्रमाण के हाथ का नाम है, उस हाथ के प्रमाण से चार हाथ ऊँचे। चतुर्लेख=जिनके ललाट पर चार दीर्घायु सूचक रेखाएँ हैं। ललाटे यस्य दृश्यंते चतुस्त्रिद्व्येक रेखिकाः। शतद्वयंशतं शष्ठिस्तस्यायुर्विंशतिः क्रमात्। चतुष्कल=जिनके अङ्गुष्ट-मूल में चतुर्वेदप्राप्ति सूचक चार रेखाएँ हैं। मूलेङ्गुष्ठस्यरेखानां चतस्रस्त्रिस्रएव वा। एकाद्वैवायथा योगं वेद रेखा द्विजन्मनां। चार बराबर=बाहु घुटना और कपोल चार जिनके सम हैं ॥ १८ ॥

‡ द्वन्द चतुर्दशसम=चौदह युगल अङ्ग जिनके समान हैं। भ्रुवौ नासापुटे नेत्रे कर्णावोष्ठौ चचूचुकौ। कूर्परे मणिबन्धौच जानुनी वृषणौ कटी। करौ पादौ स्फिजौ यस्य समौ ज्ञेयः स भूपतिः। भौहें नासापुट नेत्र कर्ण ओष्ठ स्तनाग्र केहुनी गट्टे घुटने अन्डकोष कटि हाथ पैर और स्फिज [रीढ़] ये युगल जिनके समान हैं। तीखेरदचार=दोनो दन्त

दोहा।

* शुक्ल दोय दशदीर्घ दशपद्म तीन सों व्याप्त।
षट उन्नत नव सूक्ष्म अरु तीन राघवहिं प्राप्त॥ २०॥

रोला।

सत्यधर्म श्रीमान अनुग्रह सङ्ग्रह मैं रत।
देसकाल-भागज्ञ सवन सों मधुरहि बोलत॥ २१॥
जात द्वितिय माता सों लछिमन भ्राता तिनके।
तैसेही अनुराग रूप अरु गुन हैं जिनके॥ २२॥
हैं वह सुबरन बरन और राघव स्यामल तन।
ते दोऊ नरसिंह चहत हैं तुमरो दरसन॥ २३॥
ते हम लोगन के सह खोजत सकल धरा कों।

पङ्क्तियों के अन्त के चार दन्त (चौघड़) जिनके तीक्ष्ण हैं। इनका तीक्ष्ण होना सामुद्रिक शास्त्रोक्त शुभ है। चतुर्गति=सिंह शार्दूल गज और वृष कीसी जिनकी गति है। पंचस्निग्ध=वाणी मुख नख लोम और त्वचा ये पाँच जिनके चिक्कन हैं। हनुनाम अधर=ठुड्डी नाक और ओंठ ये जिनके प्रशस्त हैं। ठुड्डी का मांसल होना शोभनीय है ओष्ठ बिंबफल से सुन्दर और आयत, नासापुट उच्च हैं। अंग आठ=हाथ पैर की नली, तर्जनी, कनिष्ठा, गुल्फ, बाहु, उर और जङ्घ ये आठ जिनके दीर्घ हैं॥ १९॥

* शुक्ल दोय=मातृ और पितृकुल दोनों जिनके शुक्ल अर्थात् निर्दोष हैं। दश दीर्घ=उरः शिरोललाटश्च ग्रीवा बाहू वः सनाभयः। पादौ पृष्टं श्रुतीचैव विशालास्तेसुखप्रदाः। वक्षस्थल मस्तक ललाट ग्रीवा दोनो भुजा स्कन्ध नाभि पैर पीठ और कान ये विशाल सुखप्रद हैं। दशपद्म=मुख नेत्रास्यजिह्वोष्टतालुस्तननखंकरौ। पादौ च दशपद्मानि पद्माकाराणि यस्यवै। मुख, नेत्र, थूथुन, जिह्वा, ओष्ठ, तालू, स्तन, नख, हाथ और पैर ये दस कमलाकार अर्थात् कमल समान सुन्दर हैं। तीन सों व्याप्त=जो श्री यश और तेज से व्याप्त हैं। षट उन्नत=कुक्षिश्च नखश्च घ्राण-स्कन्ध ललाटिकाः। सर्वभूतेषु निर्दिष्टाउन्नतास्तुसुखप्रदाः। कक्ष पेट वक्षस्थल नासिका स्कन्ध और ललाट ये उच्चसब प्राणियों को सुखप्रद हैं। नव सूक्ष्म=सूक्ष्माण्यङ्गुलिपर्वाणि केश रोम नख त्वचः। शेफश्च येषां सूक्ष्माणि ते नरा दीर्घ जीवनः। अँगुलियों की पोरैं, केश, रोम, नख, त्वचा, मूँछ, दाढ़ी के बाल कोमल सूक्ष्म दृष्टि और सूक्ष्म बुद्धि होना दीर्घ जीवियों के लक्षण हैं। तीन राघवहिं प्राप्त=धर्म अर्थ और काम ये तीनो महाराज रामचन्द्र को प्राप्त हैं अर्थात् इन तीनों का सदा सेवन करते हैं॥ २०॥

तोकोहीँ ढूँढ़त छानत हैँ सब बसुधा कोँ ॥ २४ ॥
बहु बिटपन सोँ भस्यो लसत जो ऋष्यमूक अति ।
तापै निरख्यो राज-भ्रष्ट भ्राता सोँ कपिपति ॥ २५ ॥
भ्राता-भय-आरत सुग्रीव बसत प्रिय दरसन ।
ता कपि-पति को कीनो हमलोगनहूँ सेवन ॥ २६ ॥
चीर बसनधर कर मैं बर बिसाल धनुधारी ।
तिन धनुधर नरसिंहन कोँ कपिईस निहारी ॥ २७ ॥
कूदि गयो ता गिरि के सिखर होइ भय-मोहित ।
बानरेस ह्वै के ता गिरि के सृङ्ग तबै थित ॥ २८ ॥
मोहीँ को तुरतैही तिनके पास पठायो ।
मैं सुग्रीव-बचन सुनि नरसिंहन ढिग आयो ॥ २९ ॥
हाथ जोरिकै तिनहिँ तत्व सब हाल सुनायो ।
लच्छन-रूप-जुक्त तिन मन सनेह उपजायो ॥ ३० ॥
तिन नरबरन चढ़ाइ पीठ ऊपर पहुँचायो ।
अैार तत्व सोँ सुग्रीवहिँ सबही समुझायो ॥ ३१ ॥
कीरतिमान कपीस अैार नर-पति की बाढ़ी ।
तहँ मिलिबे सोँ आपुस माहिँ प्रीति अति गाढ़ी ॥ ३२ ॥
बरनि परस्पर पूर्व-वृत्त बिस्वासहिँ कीनो ।
तब रघुबर ने सुग्रीवहिँ आस्वासन दीनो ॥ ३३ ॥
पुनि तुव नास-जात बलधारी रघुबर-सोकहिँ ।
तिय हित अति तेजस्वी बालि-दलित-सुग्रीवहिँ ॥ ३४ ॥
बानरेस सोँ कीनो लछिमन सबहि निवेदन ।
सुनिकै वह कपीस तब लछिमन के इमि बैनन ॥ ३५ ॥
होत भयो निष्प्रभ जिमि राहू-ग्रस्यो दिवाकर ।
तब तुव तन के सोभन अलङ्कार जे सुन्दर ॥ ३६ ॥

गिरे धरनि पै हरि लै चल्यो तुम्हें जब निसिचर।
तिन्हें राम ढिग लै आए बानर-जूथपबर ॥ ३७ ॥
हाल न जानै तुव पै मुदित होइ दिखरायो।
कीनो राघव के अरपन जिनको मैं लायो ॥ ३८ ॥
भरत रवहिं ते टूटन सों कछूक बिखराए।
तिनको बारबार रघुबर निज अङ्क लगाए ॥ ३९ ॥
महाराज तब परम जोर सों लागे रोवन।
भभकि उठ्यो ता छन रघुबर को सोक-हुतासन ॥ ४० ॥
महानुभाव दुखित ह्वै लगे धरनि पै लोटन।
कष्ट सहित मैंने बैठायो कहि बहु बचनन ॥ ४१ ॥
महामूल ते भूषन पुनि पुनि करि अवलोकन।
कीन लखन सह तिन्हहिं राम सुग्रीवहिं अरपन ॥ ४२ ॥
महारानि तुमको न लखन सों तापित रघुबर।
नित्य अग्नि लगिबे सों जैसे अग्नि-महीधर ॥ ४३ ॥
सोक अनिद्रा चिन्ता तुव बिनु तापत ऐसे।
तापत अग्नि-अगारहिं अग्नि अनेकन जैसे ॥ ४४ ॥
तोहिं लखन बिनु राम सोक सों हैं परिचालित।
भूमिकम्प सों महामहीधर जैसे कम्पित ॥ ४५ ॥
निरखत रम्य काननन नदी अनेकन निरझर।
बैदेही तुव लखिबे बिनु नहिं प्रीति लहत पर ॥ ४६ ॥
वह नरसिंघ राम अब तोहिं आसुही पैहैं।
मित्र और बन्धुन के सह रावनहिं नसैहैं ॥ ४७ ॥
भई प्रतिज्ञा पुनि कपिपति अरु रघुनन्दन की।
तुम्हहिं खोजिबे की अरु बाली के मारन की ॥ ४८ ॥
तब सुग्रीव दोऊ बीरन किस्किन्धा लायो।

आइ तहाँ तिनसों रनमें बालिहिं मरवायो ॥ ४९ ॥
तब रन में रघुबर के बलसों बाली कों हति।
कीनो सुग्रीवहिं सब कपि अरु रीछन को पति ॥ ५० ॥
भए मित्र ऐसे सुग्रीव औार श्रीरघुबर।
जानो मोकों हनूमान आयो तिनको चर ॥ ५१ ॥
इमि सुग्रीव राज लहिकै कपिबरन बोलायो।
तिन बलधारिन को दसदिसि तुव हेतु पठायो ॥ ५२ ॥
ते कपि-पति की आज्ञा पाइ महाबल वारे।
अद्रिराज सम बपुधर इत उत भूमि सिधारे ॥ ५३ ॥
खोजि रहे हैं ते सब अब सुग्रीव-बचन-डर।
घूमत बसुधा पैं ह लोग औार सब बानर ॥ ५४ ॥
अङ्गद नाम महाबल श्रीजुत बाली को सुत।
बानर-सिंह चल्यो है त्रितिय अंस सेना-जुत ॥ ५५ ॥
कछुदिन लों हम विन्ध्य महीधर माहिं भुलाए।
परम सोक बस ह्वै तहँ बहु दिन रैन बिताए ॥ ५६ ॥
कारज की निरासता औार काल बीतन सों।
कपि-पति डर सों ठान्यो त्यागन निज जीवन कों ॥ ५७ ॥
खोजि नदी प्रस्रवनन अरु अनेक गिरि-दुर्गन।
पै न पाइ तुव खोज चह्यो निज प्रानन त्यागन ॥ ५८ ॥
करन लगे हम ता गिरि-सिखर प्रायउपवेसन।
इमि बानर पुङ्गवन उपोसित करि अवलोकन ॥ ५९ ॥
सोक-उदधि में मगन लग्यो अति अङ्गद रोवन।
सोंचि बालि को मरिबो औार तुम्हारो खोवन ॥ ६० ॥
हम लोगन को उपवेसन जटायु को मरनो।
स्वामि-बचन-निरास ह्वै जीवहिं त्यागन करनो ॥ ६१ ॥

काज-सिद्धि हित जनु अतिबल पच्छी तित आयो।
गिद्धराज-भ्राता सम्पाती नाम कहायो ॥ ६२ ॥
सुनि भ्राता-बध कुपित होइ यह बचन उचास्यो।
कौन बली ने का थल पै मम भ्रातहिँ मास्यो ॥ ६३ ॥
बानरबर यह सुनिबे चाहत तुम लोगन सों।
भाष्यो अङ्गद जनस्थान में तासु मरन कों ॥ ६४ ॥
भीमरूप निसिचर ने जिमि मास्यो तुमरे हित।
सुनि जटायु को मरिबो भयो अरुन-सुत दुःखित ॥ ६५ ॥
भाष्यो ताने सुन्दरि तोहिँ बसत गृह रावन।
सुनि ऐसे सम्पाती-बचनहिँ प्रीति बढ़ावन ॥ ६६ ॥
चले तहाँ सों तब हम सब अङ्गद आदिक भट।
बिन्ध्याचल सों पहुँचे उत्तम सागर के तट ॥ ६७ ॥
हृष्ट पुष्ट तुव दर्सन हित उत्साहित बानर।
अङ्गदादि सब आइ गए सागर के तट पर ॥ ६८ ॥
तुव दर्सन हित उत्सुक भए बहुरि ते चिन्तित।
मैने लख्यो उदधि लखि दुखित कीस-सेना तित ॥ ६९ ॥
छाँड़ि तीव्र भय कों मैने लाँघ्यो सत जोजन।
प्रविस्यो निसि लङ्का में जोन भरी निसिचर-गन ॥ ७० ॥
लख्यो सोक-पीड़ित तुमकों रावनहुँ लखायो।
हे सुन्दरि सब हाल जथराथ तुमहिँ सुनायो ॥ ७१ ॥
बोलौ मोसों देवि अहौं मैं राघव को चर।
उनहीं को भेजो आयो तुव हित या थल पर ॥ ७२ ॥
जानौ देवी मोहिँ सुग्रीव-सचिव मारुत-सुत।
सर्व सस्त्रधारिन में बर काकुत्स्थ कुसल-जुत ॥ ७३ ॥
बड़े भ्रात कों आराधत लछिमन सुभ लच्छन।

तुव बलधारी स्वामि हेतु हैं तत्पर सब छन ॥ ७४ ॥
मैं इकलेहि इत आयो मानि कीसपति-बचनन।
कामरूपधारी असहाय करतहूँ बिचरन ॥ ७५ ॥
लाँघ्यो मैंने दच्छिन दिसि कों तुम कों खोजत।
तुमरे नाहिं मिलन सों जो कपि-सेना सोँचत ॥ ७६ ॥
नासूँगो तिन सन्तापहिँ सुनाइ तुव दरसन।
भयो न वृथा भाग्य सों मेरो सागर-लङ्घन ॥ ७७ ॥
हे देवी तुव दरसन-कृत जस अब मिलि है मोहिं।
महाबली राघवहू अब आसुहिं लहिहैं तोहिं ॥ ७८ ॥
पुत्र औार बन्धुन के सह हनिकै दसकन्धर।
माल्यवान वैदेही गिरि-गन मैं इक गिरवर ॥ ७९ ॥
मम पितु केसरि बानर जात रह्यो गोकर्नहिं।
लहि देवर्षिन आज्ञा मार्‍यो सम्बसादनहिं ॥ ८० ॥
ताके क्षेत्र माहिं मैं हूँ मारुत सों जायो।
निज कर्मनहीं सों जग मैं हनुमान कहायो ॥ ८१ ॥
तुव बिस्वास हेतु कीनो है पति-गुन-बरनन।
लैजैहैं आसुहिं तोहिं ह्यां सों अब रघुनन्दन" ॥ ८२ ॥
सोक-कृसित सीता इमि सुनि बिस्वासहिं आन्यो।
स्वामि-चिन्ह बरनन सों ताहि दूत तब जान्यो ॥ ८३ ॥
तब हरषित ह्वै सीय अतुल आनन्दहि पायो।
बक्र भैांह जुत नैनन आँनद-बारि बहायो ॥ ८४ ॥
अरुन सेत आयत लोचन जुत तामुख उत्तम।
सोभित भयो राहु सों छूट्यो उडुपति के सम ॥ ८५ ॥
मारुत-सुत हनुमानहिं अन्य न दूतहिं मान्यो।
पुनि ता सुन्दरि सों कपि उत्तर बचन बखान्यो ॥ ८६ ॥

"लहु मैथिलि जिय आस्वासन मैंने बरन्यो सब।
कहा करूँ तोहिं कहा रुचत मैं चलो जात अब ॥ ८७ ॥

दोहा।

सम्बसादनहिं रन हन्यो मुदित महर्षि महान।
तासों जनम्यो पवन सों मैं परभाव समान" ॥ ८८ ॥

इति पंचत्रिंशः सर्गः।

षट्त्रिंश सर्ग।

दोहा।

हनूमान मारुत-सुवन बहुरि तेज को ऐन।
सीता को बिस्वास लखि बोल्यो मधुरो बैन ॥ १ ॥

रोला।

"हे महरानी मैं हूँ बानर दूत राम को।
लखु या राम-नाम-अङ्कित मुँदरी ललाम को ॥ २ ॥
दीनो तुव बिस्वास हेतु ताको मैं लायो।
लहु आस्वासन दुख बीतन को दिन अब आयो" ॥ ३ ॥
लैके देखन लागी निज पति को कर-भूषन।
जैसे मिली स्वामि सों सीता भई मुदित मन ॥ ४ ॥
अरुन सेत नैनन-जुत ताको आनन सुन्दर।
सोभित भयो राहु सों छूट्यो जैसे हिमकर ॥ ५ ॥
स्वामि-सँदेसहिं सुनत लजीली वह बाला तित।
करिकै आदर कपिहिं प्रसंसि भई आनन्दित ॥ ६ ॥

दोहा

"हे कपि तू समरथ सुबुध अरु है बिक्रम वान।
जो इकलेहि धरसन कियोनिसिचर-गन-अस्थान ॥ ७ ॥

रोला।

यह मकरालय सागर जाको सत जोजन हद।
श्लाघनीय बल तूने लाँघि कियो तेहि गोपद ॥ ८ ॥
नहिँ मैं तोहिँ प्राकृत बानर समुझत कपि सत्तम।
जो रावन सोँ तोकोँ नहिँ है भय वा सम्भ्रम ॥ ९ ॥
हे बानरबर मोसोँ बोलन जोग अहै तू।
महानुभाव राम सोँ जो इत भेजो है तू ॥ १० ॥
भेजि न सकत परिच्छा बिनु बिनु जाने विक्रम।
दुराधर्ष वह राघव तोकोँ कबहुँ. पास मम ॥ ११ ॥
अहैँ देव सोँ कुसल सत्यसङ्कर रघुनन्दन।
और तेजधर लखन सुमित्रा-आँनद-बरधन ॥ १२ ॥
कुसल राम तो सागर मेखल धरनिहिँ क्योँ नहिँ।
करिके कोप जुगान्त अनल के सम न जरावहिँ ॥ १३ ॥
अथवा सकत सक्तिधर करि निग्रह देवन को।
मैं समुझत न अन्त आयो मेरेहि दुःखन को ॥ १४ ॥
भला न राम लहैँ दुख वा सन्तापित होवैं।
पुरुषोत्तम उत्तर काजन की सुधि नहिँ खोवैं ॥ १५ ॥
दीन भ्रमित तो नाहिँ कारजन मैं घबरात न।
करत अहैँ तो नृप-सुत निज पौरुष के काजन ॥ १६ ॥
सेवत द्वैबिध[1] त्रिबिध[2] उपायन हेतु उपायहिँ[3]।
मित्रन सुहृदन हेतु परन्तप जीतन चाहहिँ ॥ १७ ॥
करत लाभ तो मित्रन को सेवित मित्रन सोँ।

---

१ दोप्रकार के सौम्यासौम्य उपाय। २ धर्मार्थ काम रूपी त्रिविध पुरुषार्थों के साधन करनेवाला उपाय। ३ साम दाम दण्ड भेदादि प्रयोग करके धर्मार्थ कामादिक साधन का उपाय।

हैं सुभचिन्तक लहत प्रतिष्ठा तिन सुहृदन सों ॥ १८ ॥
चाहत तो धरनी-पति-सुत प्रसाद देवन को।
करत दैव अरु पुरुषारथ के तो सेवन को ॥ १९ ॥
मोसों बिछुरन सों वे नेह-रहित तो नहिं हैं।
भला मोहिं या दुख सों तो रघुनाथ उबरिहैं ॥ २० ॥
सुख के जोग नित्य दुख के न जोग रघुनन्दन।
यह महान दुख लहिकै तो नहिं होत व्यथित मन ॥ २१ ॥
भला सुमित्रा कौसल्या को और भरत को।
कबहूं कबहूं मङ्गल कुसल सुनाइ परत तो ॥ २२ ॥
मेरे कारन सों वह मान जोग रघुनन्दन।
सोक बिबस तो नहिं करिहैं तो मेरो तारन ॥ २३ ॥
अच्छोहिनि निज भीमसेन मन्त्रिन सों रच्छित।
भेजैंगे तो भरत भ्रात-वत्सल मेरे हित ॥ २४ ॥
भला कीस-पति श्रीजुत वह सुग्रीवहु ऐहैं।
मम हित दन्त नखायुध बानर-सेना लैहैं ॥ २५ ॥
भला सूर वह लखन सुमित्रा-आँनद-बरधन।
कबहुं अस्त्रविद हनिहैं सरजालन निसिचर-गन ॥ २६ ॥
रौद्र अस्त्र सों हन्यो राम सों रन मैं रावन।
सुहृदन के सह कब आसुहि करिहौं अवलोकन ॥ २७ ॥

हरिगीतिका

गन्धित कमल सम बरन सुबरन बदन श्रीरघुनाथ को।
नहिं सूखतो तो जलज आतप सों न लहि जिमि पाथ को ॥
लै चलत पैदल धर्म बस मोहिं राज निज त्यागन किये।
नहिं भए सोकित भीत सो धीरज धरत तो निज हिये ॥ २८ ॥
माता पिता नहिं कोउ सनेही औरहू मम सम अहै।

प्रिय को सँदेसो सुनौ मेरो प्रान तबहीं लौं रहै" ॥
बहु अरथ सों जुत मधुर बचनहिं देवि तब इमि भाषिकै।
चुप ह्वै गई सुन्दरी कपि-बच सुनन जिय अभिलाषि कै ॥ २९ ॥

रोला

तब अति बली पवन-सुत सीता की बानी सुनि।
हाथ जोरि मस्तक नवाइ भाष्यो बचनहिं पुनि ॥ ३० ॥
"कमल नयन रघुनन्दन तुम्हहिं इहाँ नहिं जानत।
सचिहिं सक्र सम तुव उधार मैं बिलँबहि आनत ॥ ३१ ॥
अब मोसों सुनिकै तुरतहि रघुबर आवैंगे।
बानर-गन की महासेन निज सँग लावैंगे ॥ ३२ ॥
या अछोभ सागरहिं बाँधि कै निज बानन सों।
करिहैं लङ्कहिं सान्त राम रजनीचर-गन सों ॥ ३३ ॥
मृत्यु अमर वा असुर विघ्न जो यामैं करिहैं।
ऐहैं राघव के पथ तो तिनहूँ को मरिहैं ॥ ३४ ॥
देवि न तोहिं लखन सों राम सोक-परिपूरित।
नेकु न धीरज धरत सिंह जिमि गज सों अर्दित ॥ ३५ ॥
करत सपथ मैं मन्दर की अरु फूल फलन की।
दुर्दर मलय मेरु अरु विन्ध्यादिक गिरि-गन की ॥ ३६ ॥
बिम्बओंठ सुन्दर दृग अरु बर कुन्डलधारी।
पूर्न उदित ससि पिय-मुख परिहै तोहिं निहारी ॥ ३७ ॥
आसुहिं अब प्रस्रवन अचल पै लखिहै रघुबर।
जिमि बैठे ऐरावत गज के पीठ पुरन्दर ॥ ३८ ॥
खात न आमिष राघव करत न आसव सेवन।
द्वैद्वै दिन बीते पै करत बन्यफल भोजन ॥ ३९ ॥
दंस मसक अहि कीट बदन पै जो चढ़ि जाहीं।

तोमैं मन दीने वह तिन्हहिँ हटावत नाहीं ॥ ४० ॥
नित्य ध्यान मैं तत्पर नित्यहि सोक-परायन ।
होइ काम के बस नहिँ करत अन्य कछु चिन्तन ॥ ४१ ॥
जागत रहत सदा राघव कबहूँ सोवत जो ।
सीता सीता यह मृदु बैन उचारि उठत तो ॥ ४२ ॥
जो नारिन को प्यारो फल वा फूल निहारत ।
लेइ साँस तो हा प्यारी यह बचन उचारत ॥ ४३ ॥

हरिगीतिका ।

वह नित्य तापित देवि सिय सिय रटत हैं इमि वचन कोँ ।
व्रत धरे नृप-सुत करत तुमरे लाभ के हित जतन कोँ" ॥
सुनि राम-कथहिँ बिसोक सोकित राम सम पुनि ह्वै गई ।
घन घिर्‌यो प्रकटित चन्द-जुत सारद निसा सम सिय भई ॥ ४४॥

इति षटत्रिंशः सर्गः ।

सप्तत्रिंश सर्ग ॥

रोला ।

पूरन ससि मुखि सीता सुनि कपिबर की बानी ।
बोली बानी बहुरि धर्म अर्थन सोँ सानी ॥ १ ॥
" विष सोँ मिल्यो अमृत सम तू बोल्यो कपि या छन ।
हैं जु राम नहिँ अन्यमना अरु सोक-परायन ॥ २ ॥

दोहा ।

होइ कष्ट दारुन परम वा ऐस्वर्य्य बिसाल ।
बाँधि रज्जु वत नरन को खैंचि रह्यो है काल ॥ ३ ॥

रोला।

अहै दैव अनिवार्य सदाही प्रानी-गन सों।
देखु राम लछिमन अरु मोहिं मोहित दुःखन सों॥ ४॥

दोहा।

किमि रघुनन्दन जाइहैं या दुख के अब पार।
पीड़ित थाक्यो नाव जिमि डूबे पारावार॥ ५॥

रोला।

करिकै निसिचर-गन को बध अरु रावन को हति।
मथिकै लङ्काको कब लखिहैं मोको मन पति॥ ६॥
करैं त्वरा कछु उनसों पूरो होइ न जबलौं।
यह सम्वत्सर है यह मेरो जीवन तबलौं॥ ७॥
है यह दसवों मास सेस द्वैही अब केवल।
कीनो निरधारित जु समय मम हित रावन खल॥ ८॥
भ्रातु बिभीषन ने करि बहुत जतन समुझायो।
मोहिं छाँड़न हित पै ताके मन में नहिं आयो॥ ९॥
मम प्रत्यर्पन नाहिं रूचत है ताके मन को।
खोजत रन में मृत्यु काल-बस-गत रावन को॥ १०॥
कला बिभीषन की जो जेठी कन्या है वह।
भेजी निज माता सों आइ सुनायो मोहिं यह॥ ११॥
है अविन्ध्य नामी मेधावी इक निसिचरवर।
रावन-सम्मत वृद्ध सुसील सुबुध धीरजधर॥ १२॥
कह्यो राम सों निसिचर-गन को नास उपस्थित।
पै नहिं सुनत दुरात्मा ताके बचनहिं निज हित॥ १३॥
मोहिं निसिचय अब सीघ्र पतिहिं लहिहौं कपिसत्तम।
तिनमें बहु गुन अन्तरआत्मा सुद्ध अहै मम॥ १४॥
आनृसंस्य पौरुष कृतज्ञता अरु बल तन में।

हैं विक्रम उत्साह प्रभावहु रघुनन्दन में ॥ १५ ॥
जनस्थान में मार्यो चौदह सहस निसिचरन ।
बिनु भ्रातहि तिन ढिग को सत्रु लहै उद्वेग न ॥ १६ ॥
इन दुखदायिन सों ता नरवर की तुलना किमि ।
जानत मैं तिनको प्रभाव सुरपति को सचि जिमि ॥ १७ ॥
श्रीरघुनाथ दिवाकर किरन रूप निज बानन ।
निसिचर-गन रूपी अरि तोयहिं करिहैं सोसन" ॥ १८ ॥
सोक-कृसित राघव के हित इमि कहत तहाँ पर ।
अस्रु-पूर्न-मुखि सीता सों बोल्यो पुनि कपिबर ॥ १९ ॥
"सुनत बचन मेरो तुरतहि रघुनन्दन ऐहैं ।
कपि रीछन सों भरी महासेना सँग लैहैं ॥ २० ॥
अथवा तोकों आजहि या निसिचर-कृत दुख सों ।
देत छोड़ाइ बैठु मम पीठहिं सुन्दरि सुख सों ॥ २१ ॥
जैहौं सागर-पार पीठ पै तोहिं चढ़ाई ।
रावन सह लङ्कहु मैं ढोइ सकत लैजाई ॥ २२ ॥
मैं तोकों आजहि प्रस्रवन-स्थित रघुपति ढिग ।
पहुँचैहौं जिमि हुत हव्यहिं पावक सुरपति ढिग ॥ २३ ॥
लखिहै सीते लछिमन सह रामहिं आजहि इमि ।
तत्पर भए दैत्य-गन के बध माहिं विष्णु जिमि ॥ २४ ॥
आस्रम-थित अति बल उत्साही तुव दरसन हित ।
भूधर-राज-सिखर पै अहैं पुरन्दर सम थित ॥ २५ ॥
चढ़ौ देवि मम पीठ उपेच्छा करौ न भामिन ।
राम मिलन चाहो हिमकर सों जैसे रोहिनि ॥ २६ ॥
लखत बिलम्ब तोहिं है जितनो राम उचारत ।
तितनेहिं मैं चढ़ु पीठ उदधि नभ पार उतारत ॥ २७ ॥

मैं इतसों तोको लैके चलिहौं भामिन जब।
मो गति सँग नहिं जाइ सकैं लङ्का-बासी सब ॥ २८ ॥
बिनु संसय जैसे मैं आयो हूँ या थल पर।
तैसइ लखो चढ़ाइ तुम्हें लै चलिहौं अम्बर" ॥ २९ ॥
सुनिकै बैदेही कपिबर की अद्भुत बानी।
बोली हनुमत सों बिस्मित बदनी हरषानी ॥ ३० ॥
"किमि कपि मोहिं तू इते दूर लैजानो चाहत।
बानरबर निस्चिय मैं यह तुव कपिपन मानत ॥ ३१ ॥
चाहत किमि लैजान इहाँ सों मोहिं अल्पतन।
चहत मनुज-पति मम स्वामी के ढिग पहुँचावन" ॥ ३२ ॥
मारुत-सुत हनुमान बचन सुनिकै सिय केरो।
सोँच्यो श्रीजुत भयो नवीन अनादर मेरो ॥ ३३ ॥
मम बल वा प्रभाव बैदेही जानत है नहिं।
तासों याहि लखाऊँ निज इच्छा-कृत रूपहिं ॥ ३४ ॥
बानर सत्तम हनूमान ने इमि विचारि मन।
दिखरायो सीता कों निज रूपहिं अरिअरदन ॥ ३५ ॥
बानरबर धीमान उतरि ता तरु सों ता छन।
सिय-बिस्वास हेतु लाग्यो निज बदन बढ़ावन ॥ ३६ ॥
दीप्त अनल सम मेरु और मन्दर सम बाढ़ो।
भयो जानकी के आगे बानरबर ठाढ़ो ॥ ३७ ॥
परवत के सम कीस ताम्रमुख अति बल वारो।
बज्रदन्त नख भीम बेग इमि बचन उचारो ॥ ३८ ॥
"गिरि प्राकार अटा तोरन बिपिनन सों छाई।
सकल उठाइ लङ्कपति सह लङ्कहिं लै जाई ॥ ३९ ॥
करो नाहिं सन्देह धरो निस्चिय जिय एही।

रहित सोक सों करो राम लछिमन बैदेही" ॥ ४० ॥
पद्म-पत्र सम दीरघनैनी जनक-कुमारी।
बोली गिरि सम मारुत-औरस सुनहिँ निहारी ॥ ४१ ॥
"जानत मैं तुव सत्व और बल कों कपिसत्तम ॥
पवन सरिस गति अद्भुत तेजहु पावक के सम ॥ ४२ ॥
किमि कोउ दूजो प्राकृत आइ सकत या थल पर।
अप्रमेय रत्नाकर के पारहिँ बानर बर ॥ ४३ ॥
जानत मोको ढोइ गमन की सक्ति अहै तोहिँ।
चहिय बिचारन पै अपनी कारज-सिद्धिहु मोहिँ ॥ ४४ ॥
उचित नाहिँ है कपिबर तुव सँग चलनो मेरो।
करिहै मोहिँ मूरछित बेग पवन सम तेरो ॥ ४५ ॥
जात जलधि के ऊपरही ऊपर अम्बर में।
गिरौं पीठ सों चलत बेग सों अति सागर में ॥ ४६ ॥
तिमि झख नक्र भरे सागर मैं गिरिहौं जो मैं।
ह्वैहौं बिबस बारि-जन्तुन को भोजन तो मैं ॥ ४७ ॥
जाइ सकत तुव साथ नाहिँ मैं सत्रु-बिनासन।
अहै और सन्देह तोहिँ मम सह करि निरखन ॥ ४८ ॥
मोहिँ लैजात निरखि तुव पीछे चलिहैं धाई।
भीम बली लङ्केस दुष्ट की आज्ञा पाई ॥ ४९ ॥
मुद्गर सूलपानि ते सूर घेरिहैं तोको।
परिहै संकट मैं तू बीर लिए तब मोको ॥ ५० ॥
आयुधधर ते नभ मैं आयुध बिनु रहिहै तू।
मोको किमि बचाइहै और जाइ सकिहै तू ॥ ५१ ॥
क्रूर-कर्मकारिन सों तुव सङ्गर ह्वैहै जब।
गिरौं पीठ सों होइ कदाचित भय आरत तब ॥ ५२ ॥

हैं ते निसिचर महाभयङ्कर अरु बल सों जुत।
जीतैं तोहिं कदाचित रन मैं ते मारुत-सुत ॥ ५३ ॥
अथवा जुद्ध करत छाँडै मोहिं गिरि जाऊँ जो।
गिरी मोहिं पापी निसिचर धरि लै जावैं तो ॥ ५४ ॥
अथवा मोको मारैं हरि तेरे हाथन तैं।
रहत न निश्चित कछु जय और पराजय रन मैं ॥ ५५ ॥
अथवा सुनि तिन डाँट होइ मरनो जो मेरो।
बानरबर निसफल ह्वैहै प्रयत्न तो तेरो ॥ ५६ ॥
समरथ हू जु होइ तू मारन मैं सब निसिचर।
तुव मारन सों ह्वैहै नास राम को जस पर ॥ ५७ ॥
अथवा कोउ थल मोहिं छिपाइ देहिं निसिचर-गन।
जानि सकैं नहिं जहँ पै राम और बानर-गन ॥ ५८ ॥
मम हित तुव आरम्भ निरर्थक तो ह्वैजैहै।
पै तुव सँग राघव आवन मैं गुन अति ह्वैहै ॥ ५९ ॥
अमित बली राघव को जीवन मोपै निरभर।
सब भाइन को तेरो औरहु राज-बंस कर ॥ ६० ॥
ते निरास मम हेतु सोक-सन्ताप-कृसित तन।
रीछन और कपिन सह त्यागि देहिंगे जीवन ॥ ६१ ॥
स्वामि-भक्ति-बस पतिहिं छाँड़ि दूजे के गातहिं।
बानरबर मैं निज तन सों परसन चाहत नहिं ॥ ६२ ॥
भयो परस बरबस मो तन को जो रावन सों।
बिबस अनाथ कहा करती न कीन निज मन सों ॥ ६३ ॥

दोहा।

जदि मारैं दसकन्धरहिं निसिचर-गन सह राम।
मोहिं लैजाहिं तु होइगो उनहिं जोग यह काम ॥ ६४ ॥

हरिगीतिका।

देखे सुने मैने पराक्रम अहैं पति बलधाम के।
गन्धर्व निसिचर देव अहि रन मैं सरिस नहि राम के॥
रन माहिँ निरखि विचित्र धनुधर इन्द्र सम बलवान को
लछिमन सहित को सहै प्रेरित अग्नि जिमि पवमान सों॥६५॥
अरिहरन दिसि-गज सरिस रन मैं मत्त लछिमन सह जबै।
सर-किरन धर जुग-अन्त-रवि सम सहै रन मैं को तबै॥
सह जूथपन अरु लखन के मम प्रियहि कपिबर लावहू।
बहु काल सों पति-रहित सोकित मोहिँ अब हरषावहू"॥६६॥

इति सप्तत्रिंशः सर्गः।

अष्टात्रिंश सर्ग।

रोला।

तब कपिकेहरि ताबानी सों तोषहिँ धार्‌यो।
पुनि सीता सों बचन-बिसारद बचन उचार्‌यो॥ १॥
"कह्यो बचन तूने देवी जिमि चहिए तैसो।
तिय-सुभाव अरु पातिब्रत हित चहिए जैसो॥ २॥
तू नारी है तासों सकत न लाँघन सागर।
सतजोजन आयत अरु बिस्तीरन चढ़ि मोपर॥ ३॥
बिनय-भरी तूने जो दूजो कारन बरनो।
छाँड़ि राम को दूजे को तन परस न करनो॥ ४॥
महानुभाव तासु पत्नी तेरे सो जोगहि।
छाँड़ि देवि तोकों को दूजी अहै सकत कहि॥ ५॥
सुनिहैं आदि अन्त लौं मोसों सब रघुसत्तम।

कीनो चेष्टा जौन और भाषन आगे मम ॥ ६ ॥
करिबे को राघव-प्रिय पुनि अनेक कारन सों ।
ह्वै सनेह-बस मैं बोल्यो ऐसे बचनन को ॥ ७ ॥
लङ्का-दुष्प्रवेशता सागर-दुस्तरता गुनि ।
कहे बैन मैंने निज सामर्थहिं बिचारि पुनि ॥ ८ ॥
चाहत रघुनन्दन सों आजहि तोहिं मिलावन ।
गुरु सनेह भक्ती बस किय न अन्यथा भाषन ॥ ९ ॥
जो मो सँग नहिं जान चहो तौ देहु चिन्हानी ।
होइ सुन्दरी जो श्रीराघव की पहिचानी" ॥ १० ॥
देव-सुता सम सीता सुनि कपि-बर की बानी ।
बोली बानी आँसुन-गद्गद अच्छर-सानी ॥ ११ ॥
"यह तुम मेरी बर पहिचानि बताओ कपिबर ।
चित्रकूट परवत बर के ईसान कोन पर ॥ १२ ॥
मन्दाकिनि के निकटहि सिद्धन सों सेवित थल ।
तापस आस्रम बसत जु भर्‌यो मूल फल अरु जल ॥ १३ ॥
ता उपवन को खन्ड जु नाना कुसुम-सुगन्धित ।
अङ्क माहिं मम सोए तुम जलक्लिन्न होइ जित ॥ १४ ॥
तहँ उद्यत बायस मोपैं बहु चोंच चलायो ।
जद्यपि मैंने ताको ढेलन मारि भगायो ॥ १५ ॥
मोहिं बिदारि वह बायस ताही थल छिपि जातो ।
आमिष-भोजी मोहिं मारन में नहिं सकुचातो ॥ १६ ॥
भई क्रुद्ध तापै जब खसकी करधनि मेरी ।
खस्यो बसन खैंचत करधनि तुमरे दिसि हेरी ॥ १७ ॥
क्रुद्ध भई मैं तुम्हहिं हँसत लखि कै सकुचाई ।

होइ बिदारित बायस सों तुमरे ढिग आई ॥ १८ ॥
थकित होइ सोई मैं तुव उत्सङ्ग माहिँ जब।
कियो मुदित तुमने क्रोधित मम आस्वासन तब ॥ १९ ॥
पूछ्यो मुख मम आँसुन सों नैनन कों पोंछति।
लख्यो नाथ तुमने मोहिँ बायससों कोपित अति ॥ २० ॥
बहुत काल सोई पिय-अङ्क माहिँ मैं क्रम सों।
पुनि सोए मम अङ्क माहिँ भरताग्रज स्रम सों ॥ २१ ॥
ताहू थल पै आइ काक मोकों जाग्यो गुनि।
उठी अङ्क सों पिय के लग्यो बिदारन पुनि पुनि ॥ २२ ॥
उड़िकै पुनि पुनि मोकों अतिहि बिदारन लाग्यो।
उठे राम तब निरख्यो सोनित मम तन लाग्यो ॥ २३ ॥
इमि दारितउरोज लखि मोकों महाबाहु वह।
साँस लेत तब क्रुद्ध भुजङ्ग सरिस बोले यह ॥ २४ ॥
कियो नागनासोरू विदारित कौन उरोजन।
कौन करत है क्रुद्ध पंचमुख अहि सह क्रीड़न ॥ २५ ॥
देखत इत उत तुमने वह बायस निरख्यो तित।
रुधिर-पूर्न तीछन नखधर मेरे सम्मुख थित ॥ २६ ॥
वह मघवा को आत्मज उड़िबे वारन मैं बर।
पवन सरिस गतिधर घुसि गयो धरनि के भीतर ॥ २७ ॥
तबै तरेरत दृगन कोप सों महाबाहु अति।
ता बायस के ऊपर कीनो राम क्रूर मति ॥ २८ ॥
खैँचि कुसा आसन सों ब्रह्म अस्त्र किय जोजित।
तब प्रदीप्त कालाग्नि सरिस कुस भयो प्रज्ज्वलित ॥२९ ॥
ता प्रदीप्त कुस कों बायस पै राम चलायो।
तब बायस के पाछे वह अम्बर मै धायो ॥ ३० ॥

वह खल बायस उड्यो अनेक गतिन सों भाग्यो।
त्रान हेतु सबही लोकन में घूमन लाग्यो ॥ ३१ ॥
ताहि पिता वा सब मुनि-गनहूँ नाहिं बचायो।
तिहुँ लोकन में घूमि सरन रामहिं की आयो ॥ ३२ ॥
वह सरन्य तब भूमि पतित सरनागत ताको।
नहिं मार्‍यो रघुबीर जोग जद्यपि बध जाको ॥ ३३ ॥
छीन-सक्ति बिबरन निपतित सों प्रभु बोले तब।
वृथा न होइ सकत ब्रह्मास्त्र कहत का तू अब ॥ ३४ ॥
तबै फोरि ता खल बायस के दहिने नयनहिं।
लैके एक नयन कों तासु प्रान काढ्यो नहिं ॥ ३५ ॥
वह नवाइ सिर नृप दसरथ अरु रघुनन्दन कों।
छूटि बीर श्रीरघुनायक सों गयो सदन कों ॥ ३६ ॥
मम हित काकहु पै तुमने ब्रह्मास्त्र चलायो।
छमत ताहि क्यों नृप जो तुम सों मोहिं हरि लायो ॥ ३७ ॥

दोहा।

सो मोपै उत्साह सों कृपा करौ नर-नाथ।
मैं सनाथ तुमसों तदपि दरसत जथा अनाथ ॥ ३८ ॥

रोला।

परम धर्म है दया सुन्यो मैं तुमहिं बखानत।
महा-बीर्ज-उत्साह महाबल तुमकों जानत ॥ ३९ ॥
हौ गम्भीर अपार अछोभ जथा रत्नाकर।
सागर सह धरनी के पति हौ तुल्य पुरन्दर ॥ ४० ॥
अस्त्र विदन में बर ऐसे बलवान कहाओ।
क्यों न निसिचरन पै मम हित तुम अस्त्र चलाओ ॥ ४१ ॥
नाहिं नाग गन्धर्व देव अथवा मारुत-गन।

सहन करि सकै रामचन्द्र के बेगहिं जो रन ॥ ४२ ॥
मम मिलिबे को भ्रम है कछु तिन बलधर के मन ।
क्यों न करैं तीछन बानन सों छय निसिचर-गन ॥ ४३ ॥
क्यों न परमतप लछिमन पाइ भ्रातु-आदेसहिं ।
महावीर का कारन सों मोकों नहिं रच्छहिं ॥ ४४ ॥
वायु इन्द्र सम तेजस्वी ते दोउ नर-केहरि ।
सुर-दुधर्ष उपेच्छा रहे जु मेरे हित करि ॥ ४५ ॥

दोहा ।

बिनु संसय के कछु अहै मेरो पाप महान ।
जो समरथहू परमतप देत न मम हित ध्यान" ॥ ४६ ॥
आँसू अरु करुना भरी सुनि सिय की यह बात ।
बानर-जूथप तेजधर बोल्यो मारुत-जात ॥ ४७ ॥

रोला ।

"अहै सपथ देवी राघव हैं तुव सोकाकुल ।
राम-दुःख कों लखिकै लछिमन हूँ तापाकुल ॥ ४८ ॥
लख्यो तुम्हहिं कोउ भाँति काल नहिं यह सोचन को ।
लखिहै या छन सों सुन्दरी अन्त दुःखन को ॥ ४९ ॥

दोहा ।

ते दोऊ नरसिंह नृप-पुत्र माहाबल-ओक ।
उत्साहित तुव दरस हित छार करैं सब लोक ॥ ५० ॥
क्रूर रावनहिं बन्धु-गन सह हतिकै रन माहिं ।
आयतलोचनि राम तोहिं निज नगरी लेजाहिं ॥ ५१ ॥

रोला ।

कहो देवि जो कहनो राघव वा लछिमन सों ।
तेजस्वी सुकंठ सों अथवा बानर-गन सों" ॥ ५२ ॥

सुनिकै बानी इमि सीता तब बचन सुनायो।
"जा लोकन के स्वामिहिं कौसल्या जनमायो॥ ५३॥
तिनको सिर नवाइकै पूछो मम हित कुसलहिं।
पुनि जाने त्याग्यो बर नारि रत्न अरु मालहिं॥ ५४॥
या बिसाल धरनी हूँ मैं दुर्लभ ऐस्वर्जहिं।
करि प्रसन्न सनमान्यो निज माता अरु पितरहिं॥ ५५॥
गए राम सँग मैं माता जिनसों सुपुत्रवति।
ह्वै अनुकूल धर्मधर त्यागि सुखन उत्तम अति॥ ५६॥
करत अनुसरन भ्राता रघुबर को रच्छत बन।
सिंहस्कन्ध मनस्वी महाबाहु प्रियदरसन॥ ५७॥
माता के सम मोहिं पिता सम रामहिं मान्यो।
हरी जात मोहिं बीर लखन ने तब नहिं जान्यो॥ ५८॥
वृद्ध-सेवि श्रीजुत समरथ मितभाषी तैसे।
राजपुत्र-प्रिय अरु बर सरिस ससुर के ऐसे ५९॥
मोहूँ सों प्रिय रामचन्द्र के भ्राता लछिमन।
ता कारज के जोग न बली जु करत उद्वहन॥ ६०॥
सुमिरत बीत्यो दृत्त न राघव लखिकै जिनको।
मानि बचन मम हित तुम कुसल पूछियो तिनसों॥ ६१॥
नित्यहि मृदु सुचि दच्छ लखन प्रिय राघव केरे।
जामैं नास करैं बानरबर ये दुख मेरे॥ ६२॥
तुम प्रमान कपिबर या कारज-निर्बाहन मैं।
कियो अरम्भ जतन मम तुमतेहिं रघुनन्दन नैं॥ ६३॥
पुनि पुनि कहियो कीस सूर दसरथ-नन्दन सों।
एक मास लों धारोंगी अब निज जीवन को॥ ६४॥

बरवै।

एक मास बीते नहिं जीवित मोहिं।
पैहै कबहूँ भाषत साँचहिं तोहिं ॥ ६५ ॥

रोला।

मोहिं निसाचरिन घेरि बद्ध किय पापी रावन।
जिमि पताल सों कौसिकि तिमि अब चहिय बचावन"६६॥
तबै बसन सों चूड़ामनी सुदिव्य निकास्यो।
दियो हनुमतहिं देहु राम कों बचन उचास्यो ॥ ६७ ॥
लेइ बीर कपिबर तब ता उत्तम मनिरत्नहिं।
पहिरि लियो अँगुरी मैं अट्यो भुजा मै सो नहिं ॥ ६८ ॥
लै मनि-रत्नहिं कपिबर अरु करिकै अभिवादन।
करि प्रदच्छिना सिय की खड़ो भयो ढिग ता छन ॥ ६९ ॥
होइ परम आनन्दित सीता के दरसन सों।
राम और लछिमन के ढिग पहुँच्यो निज मन सों ॥ ७० ॥

दोहा।

धारी सीय प्रभाव सों लै मनिबरहिं महान।
गिरि पै मारुत-धूत पुनि खसित सरिस चह जान ॥ ७१ ॥

इत्यष्टत्रिंशः सर्गः।

एकोनचत्वारिंश सर्ग।

रोला।

तब मनि दै सीता हनुमत सों बात बखानी।
"पहिचानी है राघव की यह खूब चिन्हानी ॥ १ ॥
सुमिरन करिहैं बीर याहि लखि तीनहु केरो।
मो जननी को राजा दसरथ को अरु मेरो ॥ २ ॥
सो तुम बहुरि होइकै उत्साहित बानरबर।
सोंचो कारज उद्यम मैं जु कृत्य अब उत्तर ॥ ३ ॥
है तुही प्रमान कपि कारज के साधन को।
चिन्तन करू जु उपाय होय दुख के नासन को ॥ ४ ॥
हनूमान करि जतन होउ मम दुख-छयकारी"।
कीन प्रतिज्ञा करन सोई मारुति बलधारी ॥ ५ ॥
सिर नवाइ वैदेहिहिं जानो मन मैं आन्यो।
सीता मारुत-सुत कपिबरहिं जात जब जान्यो ॥ ६ ॥

दोहा

आँसुन गद्गद बचन सों तब सिय कीन बखान।
"कुसल राम अरु लखन सों जाइ कहो हनुमान ॥ ७ ॥
बूढ़े बानरबरन सों सह मन्त्री सुग्रीव।
कुसल पूछियो धर्म के सहित कीस बल-सींव ॥ ८ ॥
मोहिं उबारैं महाबाहु वह राघव जैसे।
या दुख-सागर सों तुम करो उपायहिं तैसे ॥ ९ ॥
जीवत मोको कीरतिमान राम पावैं जिमि।
लहो धर्म कहिबे सों कहन चहिय तुमको तिमि ॥ १० ॥
मम बचनहिं सुनिकै उछाह-जुत रघुनन्दन नित।
तिनको पौरुष और बढ़ैगो मम पावन हित ॥ ११ ॥

सुनिकै मेरे सन्देसहिँ तुमसोँ रघुनन्दन।
बिधिवत करन पराक्रम कोँ आँनैंगे निज मन" ॥ १२ ॥
हनूमान मारूत-सुत सुनि सीता के बैनन।
हाथ जोरिकै कीनो उत्तर बचनहिँ भाषन ॥ १३ ॥
"अब आसुहि काकुत्स्थ बानरन के सह ऐहैँ।
रन मैँ जीति अरिन कोँ तुमरो सोक नसैहैँ ॥ १४ ॥
देखि परत नहिँ कोऊ सुरासुर वा मनुजन मैँ।
बान बमत राघव सम्मुख जो ठहरै रन मैँ ॥ १५ ॥
वैवस्वत जम अर्क और परजन्यहिँ रघुबर।
रोकि सकैँ रन के मधि तुमरे हित बिसेस कर ॥ १६ ॥
सकैँ जलधि परजन्त धरनि कोँ निज बस लाई।
ह्वैहै तुव हित राघव-जय विदेह-नृप-जाई" ॥ १७ ॥
सम्यक सत्य सुभाषित कपिवर के बैनहिँ सुनि।
मान्यो ताहि जानकी यह कीनो बखान पुनि ॥ १८ ॥
बहुरि निरखि कै सीता ने गमनोद्यत कपिवर।
स्वामि-नेह-पूरित गुनि कियो कीस-बच-आदर ॥ १९ ॥
जो मन आवै तौ इक दिवस रहैा जैहैा कल।
अरि-अरदन स्रम-रहित होइ बसि कोऊ गुप्त थल ॥ २० ॥
अल्पभागिनी कोा मम कपि तुव पास रहन सोँ।
या महान दुख सोँ है होत मोच्छ इक छन कोँ ॥ २१ ॥
हे कपि-केहरि तुमरे या थल पुनि लैाटन लोँ।
बिनु सन्देह अहै संसय मेरे प्रानन कोा ॥ २२ ॥
सोक न तुम्हहिँ लखन कोा पुनि करिहै मोहिँ तापित।
जब मम परम दुःखिनी कोा ह्वैहै कपि दीपित ॥ २३ ॥

ओर महा संसय यह उपजत है मम मन में।
अहो बीर तुमरे सहाय सब बानर-गन में॥ २४॥
पार करैंगे किमि दुष्पार परम रत्नाकर।
कपिगन की सेना अथवा ते दोऊ नृपबर॥ २५॥
तीनहिं प्रानिन की समरथ सागर लाघन की।
तुमरी मारुत की अथवा विनतानन्दन की॥ २६॥
सो या दुरतिक्रम कारज-नियोग में कपिबर।
सोचो समाधान का काज-बिदन में हो बर॥ २७॥
तुमहीं एक अहो छम या कारज साधन में।
अहो पात्र तुमहीं जसदायक जयहिं लहन में॥ २८॥

दोहा।

सब सेना के सहित रन में रावनहिं नसाइ।
होय राम के जोग जो पुर लैाटैं जय पाइ॥ २९॥
परबल-अर्दन सेन निज भरिकै लङ्का माहिं।
होय सदृस तिनके जु मोहिं श्रीराघव लैजाहिं॥ ३०॥
विक्रमधर रन-सूर के पुनि अनुरूप जु होइ।
हे बानरबर-तुम करोगे अब जतनहिं सोइ"॥ ३१॥
भरे अर्थ अरु नेह सों सुनिकै सिय के बैन।
दीनो उतर सेस तब हनुमत विक्रम-ऐन॥ ३२॥

रोला।

"देवि बानरन की सेना को स्वामी कपिबर।
सत्यसन्ध सुग्रीव कीन निस्चिय तुव हितकर॥ ३३॥
वह सहसन बानर-गन की कोटिन सों है वृत।
रजनीचर-गन को नासक आसुहि ऐहै इत॥ ३४॥
ताके विक्रमवान सूर अतिसय बलधारी।
मन-संकल्प सरिस गतिधर कपि आज्ञाकारी॥ ३५॥

रुकत नाहि गति जिनकी तिरछे नीचे ऊपर।
होइ न दुखित महान कर्मह्नँ माहिँ तेजधर॥ ३६॥
गिरि सागर सह कई बार तिन उत्साहिन सोँ।
भइ प्रदच्छिन भूमि पवन-पथ-अनुसारिन सोँ॥ ३७॥
मो सम मोसोँ बढ़िकै हैँ तहँ सब साखामृग।
मोसोँ हीन नाहिँ कोउ कपि है कपि-पति के ढिग॥ ३८॥

दोहा।

मैँ आयो इत काह तिन बलवानन की बात।
बड़े न भेजे जात हैँ छोटेहि भेजे जात॥ ३९॥
वृथा अहै परिताप अब देवि सोक तुव जाइ।
एक छलाँगहि माहिँ कपि-जूथप पहुँचैँ आइ॥ ४०॥

रोला।

भानु चन्द सम उदित पीठ मम आरोहन करि।
ऐहैँ तुव ढिग बहु सेना सह ते नर-केहरि॥ ४१॥
राम लखन ते दोऊ बीर नरवर इत आई।
निज बानन सोँ देहैँ लङ्कापुरी कँपाई॥ ४२॥
परिजन के सह श्रीरघुबर दससीस नसैहैँ।
सुन्दरि तोकोँ अपने पुरी माहिँ लैजैहैँ॥ ४३॥
सो आस्वासन लहौ और जोहौ अब कालहिँ।
देखोगी प्रज्वलित अनल सम रामहिँ हालहिँ॥ ४४॥
पुत्र अमात्य बांधवन सह रावन मरिहै जब।
ससि सो रोहिनि तिमि मिलिहै तू राघवसोँ तब॥ ४५॥
देवि सोक को पार आसु करिहै अवलोकन।
अरु लखिहै बल सोँ राघव सोँ मार्यो रावन॥ ४६॥

दोहा।

आस्वासित करि मैथिलिहिँ मारुत-सुत हनुमान।
भाष्यो सिय सोँ बहुरि मन माहिँ ठानि निज जान॥ ४७॥

रोला।

लखिहै महानुभाव अरिघ्न आसु तू रघुबर।
अरु लङ्का के द्वार उपस्थित लखन धनुर्धर॥ ४८॥
सरिस सिंह सार्दूल दन्त-नख-आयुध धारे।
लखिहै बारन-पति सम बहु बानर बलवारे॥ ४९॥
ह्वैके मनमथ-बानन सों मर्मन मैं ताड़ित।
लहत न सान्ति राम जिमि गज केहरि सों अर्दित॥ ५०॥
देवि सोक सों रुदहु न होवै भय तुव मन को।
सुरपति सों सचि तिमि मिलिहै तू रघुनन्दन सों॥ ५१॥
कौन राम सों बढ़िकै कौन अहै लछिमन सम।
तुव सहाय दोऊ भ्राता हैं अनल पवन सम॥ ५२॥

दोहा।

अब रहिहै नहिं देवि चिर रौद्र निसाचर-देस।
मम पहुँचत पिय आइहै अब नहिं बिलँब बिसेस"॥ ५३॥

इत्येकोनचत्वारिंशः सर्गः।

चत्वारिंश सर्ग

रोला।

सुनिकै सीता ऐसो भाषन पवन-सुवन को
देव-सुता सम पुनि बोली निज हित बचनन को॥ १॥
"होत अनन्दित मैं प्रियवादी तोहिं लखन सों।
अर्ध अङ्कुरित सस्य भूमि जिमि वृष्टि लहन सों॥ २॥
तिन नर-सिंहहिं सोक-कृसित तन सों मैं जैसे।
परसन चाहत परसौं करौ दया तुम वैसे॥ ३॥
और राम सों बतरायेहु तुम सुकपि चिन्हानी।
बायस के इक आँखि हरन की कहौ कहानी॥ ४॥

मम ललाट पै मैनसिला को तिलक लगायो।
चहिए तुम्हहिं सुमिरनो जब मम तिलक मिटायो ॥ ५ ॥
इन्द्र बरुन सम बली सहत कैसे मम हरनो।
इन निसाचरन के घर मैं पुनि मेरो रहनो ॥ ६ ॥
यह सुदिव्य चूड़ामनि राख्यो मैं करि रच्छित।
दुख मैं एहि लखि मनहुँ तुम्हहिं लखि होत अनन्दित ॥७॥
यह जल सों उपज्यो मैनें तुमकों है दीनो।
सोक-बिबस ह्वै मैं अब नाहिं चहत हौं जीनो ॥ ८ ॥
लहत असह्य दुखहिं निसिचर-गन पास बसत मैं।
हृदय-बिदारक बचनन तुमरे हेतु सहत मैं ॥ ९ ॥
एक मास लों अरि-अरदन प्रानहिं राखोंगी।
ता बीते तुमसों बिछुरी जीवित न रहौंगी ॥ १० ॥
राखत क्रूर दृष्टि मोपैं निसिचर-पति रावन।
तुमहिं बिलम्ब करत सुनि अब जीहौं न एक छन" ॥ ११ ॥
सुनि सीता-बैनहिं आँसू अरु करुना सों जुत।
बोल्यो महातेजधर हनूमान मारुत-सुत ॥ १२ ॥
"अहै सपथ देवी राघव हैं तुव सोकाकुल।
राम दुःख कों लखिकै लछिमनहूँ तापाकुल ॥ १३ ॥
लख्यो तुम्हहिं कोउ भाँति काल नहिं यह सोचन को।
लखिहै या छन सों भामिनी अन्त क्लेसन को ॥ १४ ॥
ते दोऊ नरसिंह नृपति-सुत परम अनिन्दित।
करिहैं भसम लङ्क उत्साहित तुव दरसन हित ॥ १५ ॥
क्रूर रावहहिं बन्धुन सह हतिकै रन माहीं।
आयतनयनि राम निज नगरिहिं तोहिं लैजाहीं ॥ १६ ॥
औरहु कोऊ चिन्हानी जो राघव पहिचानै।

देहु मोहिं जाको लखि प्रीति हिये में आनै" ॥ १७ ॥
बोली सीता "दीनो तुमहिं चिन्हानी उत्तम।
देखि जतन सों याही भूषन को रघु-सत्तम ॥ १८ ॥
हनुमत बीर लाइहैं सद्धा तुव बानी पर"।
तब वह उत्तम मनि लेके हनुमान कीसबर ॥ १९ ॥
माथ नवाइ सियहिं चलिबो निज मनमें धास्यो।
सिय उत्पात करन चाहत कपिबरहिं निहास्यो ॥ २० ॥
महाबेग अति बढ़त जानकी अवलोकन करि।
बोली दीन होइके गद्गद निज कंठहिं भरि ॥ २१ ॥
"सिंह सरिस दोउ भ्राता राम और लछिमन सों।
कहो कुसल कपि-पति अरु बूढ़े मन्त्री-गन सों ॥ २२ ॥
जामें तारैं मोको महाबाहु रघुनन्दन।
या दुख-सागर सों कपि करो सोई तुम साधन ॥ २३ ॥

नरेन्द्र

निसिचर-गन-तर्जन अरू दारुन सोक-बेग यह मेरो।
कहो राम सों होवै कपिबर मङ्गलमय पथ तेरो।
होइ कृतारथ सुनि सिय-बचनहिं कपि हिय आँनद धारी
मन सों पहुँच्यो उत्तर दिसि कछु कारज सेस निहारी" ॥ २४ ॥

इति चत्वारिंशः सर्गः

एकचत्वारिंश सर्ग ।

रोला

चलत तबै पूजित ह्वैके इमि आदर-बैनन ।
ताथल सों हटिकै सोंचन लाग्यो कपि निज मन ॥ १ ॥
भयो काज सुन्दरिहिं लख्यो कछु सेस रह्यो है ।
तीन उपाय छाँड़ि चौथो अब मोहिं रुच्यो है ॥ २ ॥

हरिगीतिका

चलिहै न इनसों साम दाम न रिद्धिमानन सों इहाँ ।
बल-दर्पितन सों भेद नहिं करिहौं पराक्रम कौं इहाँ ॥
या काज को निस्चिय पराक्रम बिनु न मोकों लखिपरै ।
ढीले परैंगे कछुक जब रनमाहिं ये निसिचर मरैं ॥ ३ ॥

रोला

मुख्य काज करि कै अनेक काजन साधै जो ।
पूरब काज न बिगरै काजहिं साधि सकै सो ॥ ४ ॥
इकहि काज करि जतन जु साधै सो साधक नहिं ।
तेई समरथ जे काजहिं अनेक विधि साधहिं ॥ ५ ॥

हरिगीतिका

मैं आजही कपि-ईस के ढिग गमन निज निस्चिय कियो ।
जानौं जु रन निज और अरि-बल स्वामि सासन है कियो ॥
किमि जुद्ध होवै अनायासहिं मम निसाचर-गनन को ।
जानै जथा दससीस मम बल और अपने भटन को ॥ ६ ॥

दोहा

तब मन्त्री अरु बल सहित रन मैं रावन पाइ ।
ता बिचार अरु बल समुझि सुख सों गमन सोहाइ ॥ ७ ॥

या नृसंस को बागवर नन्दन बिपिन समान ।
नाना द्रुम बल्लिन भस्यो करत मनहिँ मुद-दान ॥ ८ ॥

रोला

याकों करिहौं नास अनल जैसे सूखो बन ।
नास भए पैं याके कोप करैगो रावन ॥ ९ ॥

हरिगीतिका

तब अस्व-गज-रथ-जुक्त रावन महा सेन पठाइहै ।
अति जुद्ध ह्वैहै सेन पट्टिस सूल धरि जब आइहै ॥
तिन चंडबल निसिचरन सों सङ्ग्राम मम ह्वैहै जबै ।
दसकंठ-प्रेरित बलहिँ हनि मैं जाइहौं सुखसों तबै ॥ १० ॥

दोहा

तब मारुत सम क्रुद्ध ह्वै हनूमान बलवान ।
बिटपन कों तोरन लग्यो निज उरु-बेग महान ॥ ११ ॥
कियो बीर हनुमान तब प्रमदा बिपिन बिनास ।
भस्यो लता द्रुम जहँ करैं कूजत पच्छि निवास ॥ १२ ॥

रोला

वह बन भग्न जलासय अरु टूटे बिटपन सों ।
अरु सुन्दर गिरि-सिखर चूर्न ह्वैके नासन सों ॥ १३ ॥
नाना पच्छि-बिनादित सर-गन के टूटन सों ।
छिन्न भए नव किसलय भूरुह और लतन सों ॥ १४ ॥
सोभित भयो न जैसे नास भयो दवानल ।
व्याकुल भईं लखाहिँ लतागन ह्वै अति बिह्वल ॥ १५ ॥

हरिगीतिका

नासे लता-गृह चित्र-गृह मृग व्याल खग आरत भए ।
वह बिपिन भयो बिनास जाके सिला-गृह सब नसि गए ॥

करि नास तहाँ असोक-बल्लिन सोक-जुत बन करि दयो।
कपि बीर के बल सों मथित अप्रमद प्रमदा बन भयो॥ १६॥

दोहा

इमि करि निसिचर-राज की मारुत सुत अति हानि।
तोरन गवन्यो इकलेही बहु सों लरिबो ठानि॥ १७॥

इत्येकचत्वारिंशः सर्गः

द्विचत्वारिंश सर्ग।

रोला

पच्छि-नाद अरु तरु-गन के टूटन-रव सों तब।
भए त्रस्त भय सों अतिही लङ्का-बासी सब॥ १॥
होइ त्रस्त भय सों सब मृग पच्छी-गन भागे।
क्रूर अपसगुन निसिचर-गन को होवे लागे॥ २॥
जागि नीद सों तब विकृताननि ते निसिचरि-गन।
निरख्यो महाबीर कपि और बिनास भयो बन॥ ३॥
महाबाहु लखि तिन्हे परमबल महा ओज-धर।
धार्‌यो रूप बिसाल निसिचरिन हेतु भयङ्कर॥ ४॥
गिरि समान अतिकाय महाबल करि अवलोकन।
ते निसिचरी जानकी सों तब लागीं पूछन॥ ५॥
"को यह काको का थल सों आयो का कारन।
कैसे याने कीनो है तेरे सह भाषन॥ ६॥
हे दीरघनयनी सुन्दरि तुम हमहिं बताओ।
कहा कियो याने सम्वाद न जिय डर लाओ"॥ ७॥
बोली तबै सुसाध्वी सीता सोभित सब तन।
"का गति मम जानन की कामरूप निसिचर-गन॥ ८॥
तुमहीं जानो जो यह अथवा जौन करैगो।

बिनु संसय अहिही अहि के पैरन जानैगो ॥ ९ ॥
नहिं जानत को है लागत मोकों हूँ अति डर।
अहै कदाचित आयो कामरूप कोउ निसिचर" ॥ १० ॥
भागीं ते निसाचरी सुनिकै सीय-बचन कों।
ठहरीं कोऊ गईं रावन सों कोऊ कहन कों ॥ ११ ॥
ते बिकृताननि निसिचरि तबै जाइ ढिग रावन।
लागीं करन बिरूप भयङ्कर बानर-बरनन ॥ १२ ॥
"नृप असोक बनिका मधि मर्कट एक भयङ्कर।
कीनो भाषन आइ सीय सों अति बिक्रमधर ॥ १३ ॥
मृगनयनी सीता सों बहु पूछ्यो हम लोगन।
पै ता बानर कों वह चाहति नाहिं बतावन ॥ १४ ॥
अहै दूत बासव को वा कुबेर को आयो।
अथवा सीतहिं खोजन हित रघुबीर पठायो ॥ १५ ॥
ताही अद्भुततन ने प्रमदा बनहिं नसायो।
जो नाना मृग-गन सों पूरित अति छबि छायो ॥ १६ ॥
नहिं कोऊ थल है तहँ पै जाकों नहिं नास्यो।
जहाँ जानकी देवि एक ताकों नहिं नास्यो ॥ १७ ॥
समुझि परै नहिं स्रम-बस अथवा सिय-रच्छन हित।
अथवा ताहि कहा स्रम कीन जानकिहिं रच्छित ॥ १८ ॥
चारु पत्र पल्लव-जुत बैठी सीता जा तर।
सो प्रबृद्ध सिंसुपा बिटप नहिं नास्यो बानर ॥ १९ ॥
उग्ररूप ताकों अब दन्ड चाहिए दीनो।
नासि बिपिन जाने सिय सों सम्भाषन कीनो ॥ २० ॥
हे निसिचर-नायक है तुव मन भावति सीता।
तासों भाषन करि को जीव रहै जग जीता" ॥ २१ ॥

सुनि इमि तिनके बैनहिं निसिचर-नायक रावन।
दहकि चितानल सम रिसि बस दृग लग्यो घुमावन॥ २२॥
गिरे क्रुद्ध ता दृग सों बिन्दु अस्रु के ऐसे।
तैल-बिन्दु सह अर्चि दीप्त दीपक सों जैसे॥ २३॥
अपने सरिस बीर जे किङ्कर नाम निसाचर।
तिनको आज्ञा दियो दन्ड देवे हित बानर॥ २४॥
ते अस्सी सहस्त्र किङ्कर-गन अति बलवारे।
निकरे ता गृह सों कर कूट मुद्गरहिं धारे॥ २५॥
घोर रूप अरू दन्त महाबल और महोदर।
चले हनुमतहिं पकरन सबै जुद्ध-इच्छाधर॥ २६॥
ते सब निसिचर कपिबर को बैठ्यो लखि तोरन।
महाकाय झुकि परे अनल पैं जिमि पतङ्ग-गन॥ २७॥
कंचन-पट्ट बिभूषित परिघन और गदन सों।
मारन लगे कपिहिं रवि सम चमकत बानन सों॥ २८॥
कर धरि मुद्गर पट्टिस सूल प्रास अरु तोमर।
सहसा ठाढ़े होत भए ते घेरे कपिबर॥ २९॥
परवत सम श्रीमान तेजधर हनुमानहुँ पुनि।
पटक्यो पुच्छ धरनि पैं गरज्यो बहुरि महाधुनि॥ ३०॥
पवन-पुत्र हनुमान बीर तब धारि महातन।
झटक्यो पुच्छहिं करत सब्द सों लङ्कहिं पूरन॥ ३१॥
घोर सोर अति भयो पुच्छ पटकन को ताड़न।
गिरे पच्छि नभ सों कपि गरजि कियो उच्चारन॥ ३२॥

दोहा।

"जयति महाबल राम अरु लखन परमबल-सीव।
पालित श्रीरघुनाथ सों जय राजा सुग्रीव॥ ३३॥

कोसलेस अघरजकरम राघव को मैं दास।
पवन-तनय हनुमान अरि-सेनहिं करत बिनास ॥ ३४ ॥
होइ सकैं प्रतिबल न मम जो दससीस हजार।
सहसन बिटपन सिलन सों जब रन करत प्रहार ॥ ३५ ॥
अभिवादन करि मैथिलिहिं लङ्कानगरिहिं अर्दि।
कृतकारज ह्वै जाउँगो निसिचर-मानहिं मर्दि" ॥ ३६ ॥

रोला।

सुनि ऐसो सन्नाद भए भय-सङ्कित निसिचर।
निरख्यो उन्नत हनुमानहिं जिमि सन्ध्या-जलधर ॥ ३७ ॥
पाइ स्वामि के आदेसहिं निस्सङ्क भए सब।
हनन लगे विचित्र सस्त्रन सों कपिबर को तब ॥ ३८ ॥
वह बलधारी तिन सूरन सों तहँा घिरायो।
तोरन लाग्यो भीम लोह परिघहिं लै आयो ॥ ३९ ॥
लै तापरिघहिं मारन लाग्यो कपि बहु निसिचर।
लै पन्नग को उड़त जथा बिनता-सुत अम्बर ॥ ४० ॥
बिचरन लाग्यो नभ में कपिबर परिघ घुमावत।
हनत निसाचर जिमि सुरपति पवि दनुज नसावत ॥ ४१ ॥
मारुत-सुत हनुमान बीर किङ्करन नसाई।
पुनि रन-इच्छा सों बैठ्यो तोरन पैं जाई ॥ ४२ ॥

हरिगीतिका।

तिनमें बचे निसिचर कोऊ कपि-भय अतिहि मन में डरे।
दससीस सों कीनो निवेदन सबै किङ्कर-गन मरे ॥
सुनि कै दसानन निज महाबल मह्यो नैन घुमाइकै।
दुर्जय बली प्रहस्त-सुतहिं निदेस दीन बोलाइकै ॥ ४३ ॥

इतिद्विचत्वारिंशः सर्गः।

त्रिचत्वारिंश सर्ग ।

रोला ।

मारि किङ्करन हनूमान आन्यो ध्यानहिं मन ।
कियो न नास चैत्यप्रासाद बिनास्यो है बन ॥ १ ॥
तासों या प्रासदहिं मैं आजही नसावत ।
इमि बिचारि मारुत-सुत मन सों बल प्रकटावत ॥ २ ॥

दोहा ।

जाइ चैत्यप्रासाद जो उन्नत मेरु समान ।
बानरबर मारुत-सुवन चढ्यो तबै हनुमान ॥ ३ ॥

रोला ।

चढ़ि गिरि सरिस चैत्यप्रासाद तबै बानरबर ।
राज्यो अति तेजस्वी जैसे उदित प्रभाकर ॥ ४ ॥
दुराधर्ष कपि बीर चैत्यप्रासाद बिनासत ।
दिपत कान्ति सों पारिजात्र सम प्रभा प्रकासत ॥ ५ ॥
प्रभावान मारुत-सुत ह्वैके महाकाय तित ।
निरभय गरज्यो करत सब्द सों लङ्कहिं पूरित ॥ ६ ॥
महासब्द सों ताके दुखदायक कर्नन को ।
चैत्यपाल-गन मोहे खग-गन गिरे गगन सों ॥ ७ ॥

दोहा ।

"जयति अस्त्रविद राम अरु लखन परम-बल-सीव ।
पालित श्री रघुनाथ सों जय राजा सुग्रीव ॥ ८ ॥
कोसलेस अघरजकरम राघव को मैं दास ।
मारुत-सुत हनुमान अरि-सेनहिं करत बिनास ॥ ९
होइ सकैं प्रतिबल न मम जो दससीस हजार ।
सहसन पादप सिलन सों जब रन करत प्रहार ॥ १० ॥

अभिवादन करि मैथिलिहिँ लङ्का नगरिहिँ अर्दि ।
कृतकारज ह्वै जाउँगो निसिचर-मानहिँ मर्दि" ॥ ११ ॥

रोला ।

ऐसे भाषि चैत्यप्रासाद चढ्यो बानरबर ।
घोर नाद करि गरज्यो जो निसिचरन भयङ्कर ॥ १२ ॥
तब धाए बहु चैत्यपाल ता नाद स्रवन करि ।
बिबिध प्रास असि और परस्वध निज करमैं धरि ॥ १३ ॥
घेर्यो पवन-सुवन कों मारत बहु सस्त्रन सों ।
काञ्चनअङ्गद परिघन और बिचित्र गदन सों ॥ १४ ॥
भानु समान दिपत बानन कपि पैं बरसावत ।
सुरसरि के महान आवर्त सरिस भए आवत ॥ १५ ॥
कपि कों घेरि लसत ठाढ़े तहँ ते रजनीचर ।
धार्यो रूप भयङ्कर तब मारुत-सुत कपिबर ॥ १६ ॥

दोहा ।

खम्भ तासु प्रासाद को सुबरन-रचित महान ।
तहँ उखारिकै बेग सों मारुत-सुत हनुमान ॥ १७ ॥
लग्यो घुमावन महाबल जो भारी सतधार ।
तासों पावक प्रकटि जरि प्रासादहु भयो छार ॥ १८ ॥
तबै जरत प्रासाद कों बानर-बीर निहारि ।
इन्द्र बज्र सों असुर तिमि सत निसाचरन मारि ॥ १९ ॥
नभ मैं श्रीजुत जाइकै बोल्यो बचन सुनाइ ।
"बहु कपि महानुभाव मम सरिस रहे हैं आइ ॥ २० ॥

रोला ।

हैं बसवर्ती कपि-पति के कपि-जूथप बलधर ।
छानत सब धरनी हम लोग और सब बानर ॥ २१ ॥

कोऊ दस कोउ सत मातङ्ग सरिस बलवारे ।
कोउ सहस्त्र मातङ्ग सरिस तन विक्रम धारे ॥ २२ ॥
ओघ मतङ्ग सरिस बल बली पवन के सम कोउ ।
हैं बानर-जूथप तहँ अप्रमेयविक्रम कोउ ॥ २३ ॥
सत सत सहस करोरन और अहैं तहँ अयुतन ।
सङ्ग लेइकै ऐसे दन्त नखायुध कपि-गन ॥ २४ ॥

दोहा ।

तुम्हरे नासक आइहैं इत सुग्रीव कपीस ।
अब न बचत तुम लोग नहिं लङ्का नहिं दससीस ॥ २५ ॥

बरवै ।

महानुभाव अहैं इक्ष्वाकू-नाथ ।
बाँध्यो बैरहिं तुमने जो तिन साथ" ॥ २६ ॥

इति त्रिचत्वारिंशः सर्गः ।

चतुश्चत्वारिंश सर्ग

रोला ।

लहि निसिचर-पति के आदेसहिं तब बलसाली ।
कढ्यो धनुर्धर घोरदन्त तब जम्बूमाली ॥ १ ॥
रक्त माल अम्बरधर रुचिर सुकुन्डल धारे ।
चन्ड समर-दुर्जय दीरघ नैनन कों फारे ॥ २ ॥
रुचिर सायकन सक्र-धनुष सम धरे सरासन ।
टनकारत प्रकटावत बज्र असनि के सम स्वन ॥ ३ ॥
घोर सोर धनु के टनकन को तासु निकरतो ।
ता रव सों सहसा दिसि बिदिसि और नभ भरतो ॥ ४ ॥
खर-जुत रथ पैं चढ्यो ताहि अवलोकन करिकै ।

गरज्यो बेगबान हनुमान मोद जिय भरिकै ॥ ५ ॥
तोरन के बिटङ्क थित कपिबर पवन-सुवन कों।
लाग्यो छेदन जम्बुमालि निज निसित सरन सों ॥ ६ ॥
अर्धचन्द्र मुख पैं इक कर्नि सीस पैं मार्‌यो।
कपि के दोउ भुजान पैं दस नाराच प्रहार्‌यो ॥ ७ ॥
तासु अरुन मुख बानन बिध्यो बिराज्यो कैसे।
फूल्यो सरद-कमल रवि किरन बिध्यो है जैसे ॥ ८ ॥
सिंच्यो रक्त सों राज्यो अरुन तासु आनन तित।
महापद्म जिमि नभ मैं कंचन-बिन्दुन-सिंचित ॥ ९ ॥
निसिचर-बानन सों हत बानरबर जिय कोप्यो।
परम बिसाल सिला इक पासहि मैं अवलोक्यो ॥ १० ॥
फेंक्यो बली जोर सों तब ताकों उखारिकै।
तोर्‌यो क्रुद्ध निसाचर तेहि दस सरन मारिकै ॥ ११ ॥
चन्डबेग कपि निज उद्योगहिं वृथा निहारी।
लग्यो घुमावन दीरघ साखू-बिटप उपारी ॥ १२ ॥
कपिवर कों ता बिटप घुमावत करि अवलोकन।
जम्बुमालि अति बली प्रहार कियो बहु बानन ॥ १३ ॥
चार सरन तरु काटि पाँच सों भुज कों भेद्यो।
इक सों उर दस बानन सों स्तन-अन्तर छेद्यो ॥ १४ ॥
सर-पूरित-तन कपि तब महाक्रोध सों पाग्यो।
परम बेग सों सोई परिघ घुमावन लाग्यो ॥ १५ ॥
महा बेग सों पुनि पुनि उत्कट परिघ घुमायो।
जम्बुमालि को दीरघ उर करि लच्छ चलायो ॥ १६ ॥
ताके नहिं सिर नाहिं बाहु नहिं जङ्घ लखाने।
नहिं धनु नहिं रथ अस्त्र बानहूँ नहिं दरसाने ॥ १७ ॥

परम बेग सों ताड़ित जम्बुमालि तब मरिकै।
गिस्यो महारथ भूमि चूर्न तरु जथा बिखरिकै ॥ १८ ॥

दोहा

जम्बुमालि अरु किंकरन के मरिबे को हाल।
सुनि दसशिर क्रोधित भयो रोस बिबस दृग लाल ॥ १९ ॥
तब प्रहस्त-सुत मरे रिसि सों दृग अरुन घुमाइ।
अति बल मन्त्री-सुतन कों आज्ञा दई बोलाई ॥ २० ॥

इति चतुश्चत्वारिंशः सर्गः

पंचचत्वारिंश सर्ग।

रोला

ते साते मन्त्री-सुत निसिचर-पति सों प्रेरित।
निकरे गृह सों सात अनल के सरिस प्रकासित ॥ १ ॥
महा सेन सँग लिए महाबल महाधर्नुधर।
ते अस्त्रज्ञ अस्त्रविद-बर जय चहत परस्पर ॥ २ ॥
हेम-जाल सों बिरच्यो ध्वजा पताकन सोभित।
तो यद सम गरजत हय-जुक्त रथन पैं ह्वै थित ॥ ३ ॥
तप्त हेम-बिरचित चापन अतिबल टनकारत।
मुदित बिज्जु सह जलधर के सम सोभा धारत ॥ ४ ॥
तब तिन सातों की जननी सुनि मरे किङ्करन।
भँई सुहृद अरु बन्धुन के सह सोक-बिकल मन ॥ ५ ॥
करि अभिमान परस्पर तप्त-हेम-भूषनधर।
पहुचे आय जहाँ बैठ्यो तोरन पैं कपिबर ॥ ६ ॥
बिस्तारत रथ-स्वनहिं बान-बरसा बरसावत।
प्रावृट-मेघ सरिस ते निसिचरबर छबि छावत ॥ ७ ॥

तबै पवन-सुत तहाँ गयो छिपि तिन बानन सों।
देखि पर्‌यो नहिं सैलराज जिमि जल बरसन सों ॥ ९ ॥
तिन बानन सों बचत पैंतरो बदलि बदलि कपि।
बिचरि बिमल नभ माहिं बचत रथ-बेगन सों अपि ॥ ८ ॥
तिनके सह खेलत नभमें वह बीर बिराजत।
सक्र-धनुष धर मेघन सह जिमि मारुत छाजत ॥ १० ॥
घोर नाद करि महासेन में भय उपजावत।
हनूमान निसिचर-गन पैं बेगहिं दरसावत ॥ ११ ॥
हन्यो थपेड़न सों कितनेहिं चरनन सों मार्‌यो।
मारि मुष्टिका सों कोउन कों नखन बिदार्‌यो ॥ १२ ॥
कितनन कों उर सों अरु जङ्घन सों दीनो दरि।
केते सुनि कपि-नादहिं गिरे धरनि पैं तहँ मरि ॥ १३ ॥
तिनके नास होइ धरनी पैं गिरिबे सों तब।
भय-व्याकुल ह्वै भागी दस दिसि वह सेना सब ॥ १४ ॥
चिक्कारत गज बिकृत भूमि पैं गिरे बाजि-गन।
भई भग्न-ध्वज-छत्रासन-रथ धरनी पूरन ॥ १५ ॥
नदी अनेक रुधिर की बहन लगीं रन-अङ्गन।
पूरि गयो लङ्का में अति बिकराल बिबिध स्वन ॥ १६ ॥
चन्ड-पराक्रम कपि अतिबली निसिचरन मारी।
तोरन बैठ्यो पुनि औरन सों लरन बिचारी ॥ २१ ॥

इति पंचचत्वारिंशः सर्गः।

षट्चत्वारिंश सर्ग।

रोला।

महानुभाव कीस सों मरे मन्त्रि-सुत जान्यो।
निज भय गोपन करि रावन उत्तम मति आन्यो ॥ १ ॥
विरूपाक्ष यूपाक्ष और दुर्धर्ष निसाचर।
भासकर्न अरु प्रघस पंच सेना-नायकबर ॥ २ ॥
आज्ञा दीनी नीति-बिसारद निसिचर-गन कों।
पवन सरिस जे व्यग्र समर मैं कपिहिं धरन कों ॥ ३ ॥
"अतिं बलधारी सेना के ये नायक जावैं।
अस्व मतङ्ग रथन सह सासन करि कपि लावैं ॥ ४ ॥
जैसे होइ सकै ता बानर पास पहुँचि तित।
करैं कर्महूँ होइ जु देस-काल-अविरोधित ॥ ५ ॥
कर्मन सों तर्कन करि ताहि न मानत बानर।
अहै सर्वथा महासत्व वह अतिसय बलधर ॥ ६ ॥
बानर समुझि नाहिं संतोष मनहिं आवत है।
नहिं यह कपि याकी जिमि कथा सुनाइ परत है ॥ ७ ॥
इन्द्र कीन तप-बल कै हम लोगन हित सिरजन।
यक्ष नाग गन्धर्व सुरासुर अरु महर्षि-गन ॥ ८ ॥
मेरे सह तुम लोगन ने है कियो पराजित।
ते कछु करनोईं चाहैं हम सब को अनहित ॥ ९ ॥
यामैं नहिं सन्देह ताहि बल सों धरि लाओ।
अति बलधारी सेना के सब अग्रग जाओ ॥ १० ॥
अस्व मतङ्ग रथन सह करो कीस को सासन।

धीरपराक्रम कपि कों तुच्छ न समुझौ निज मन ॥ ११ ॥
महापराक्रम मैंनेहुँ बानर बहुत निहारे ।
बाली अरु सुग्रीवहु जाम्बवान बलवारे ॥ १२ ॥
अन्य द्विविद आदिक कपि और नील सेना-पति ।
तिनको तेज न बल अरु ऐसी नाहिँ भीम गति ॥ १३ ॥
बलोत्साह मति रूप बदलनहुँ नाहिँ लखायो ।
बानर-रूप धारि यह महासत्व कोउ आयो ॥ १४ ॥
करिकै जतन महान बाँधि लाओ तुम सब कपि ।
मनुज सुरासुर इन्द्र सहित तिहुँ लोकन जद्यपि ॥ १५ ॥
तुम लोगन के आगे रन में ठहरि सकत नहिँ ।
पै नीतिज्ञहिँ जो चाहत रन मैं निज जीतहिँ ॥ १६ ॥
जुद्ध-सिद्धि चंचल बचनो चाहिए जतन सों ।
अति ओजस्वी ते निसिचर सुनि स्वामि-बचन कों ॥ १७ ॥
चले अनल सम भासत जातुधान ते बढ़ि बढ़ि ।
मत्त मतङ्ग महाजव बाजिन-जुत रथ चढ़ि चढ़ि ॥ १८ ॥
चले सेन सह धारन करिकै तीछन सस्त्रन ।
दिपत महाकपि बीरन ने कीनो अवलोकन ॥ १९ ॥
जैसे उदित प्रभाकर किरनन भयो प्रकासित ।
महाबेग बलवान महासय तोरन पैं थित ॥ २० ॥
महाकाय मति महा उछाह महाभुज धारी ।
घेरन लागे सब दिसि सों ता कपिहिँ निहारी ॥ २१ ॥
भीम आयुधन लै लै दौरे कपि पैं निसिचर ।
तब सुबरन-फल-भूषित लोह पंच तीछन सर ॥ २२ ॥
पद्म-पत्र सम कपि के सिर मैं मार्यो दुर्धर ।
बिध्यो सीस मैं पंच सायकन सों तब बानर ॥ २३ ॥

नदत चल्यो उड़ि गगन भरत दसहू दिसि मैं स्वन।
तबै बीर वह दुर्धर रथ पैं साजि सरासन॥ २४॥
बानन बरसावत कपि कों छावत भयो आवत।
सर बरसत ताकों वारत कपि नभ मैं धावत॥ २५॥
बरसा बीते जिमि जल बरसत मेघहिं मारुत।
तब ता दुर्धर सों इमि पीड़ित होइ पवन-सुत॥ २६॥

दोहा।

करिकै गर्जन बहुरि अति और बढ़ाइ सरीर।
दुर्धर के रथ पैं तबै उड़ि सहसा कपि बीर॥ २७॥
कूदि पस्यो गिरि पैं जथा गिरै बिज्जु की रासि।
आठ अस्व दरि और रथ-कूबर अच्छ बिनासि॥ २८॥

रोला।

गिस्यो भूमि पैं दुर्धर रथ सों त्याग्यो जीवन।
विरूपाच्छ यूपाच्छ पतित तेहि करि अवलोकन॥ २९॥
करि कोपहिं दुर्धर्ष चले अरिनासक निसिचर।
तब सहसा कपि तिन ढिग सों उड़ि चाल्यो अम्बर॥ ३०॥
तिन के मुद्गर सों ह्वै कपिबर अति उर-ताड़ित।
बेगवान तिनके बेगहिं दरि महाबली तित॥ ३१॥
गरुड़ सरिस जवसाली बहुरि भूमि पैं आयो।
साखू के इक बिटपहिं कपि उखारिकै लायो॥ ३२॥
तासों मास्यो मारुत-सुत तिन दोउ बीरन कों।
हने जानिकै बानरबर सों तब तीनन कों॥ ३३॥
महाबेग अतिबली प्रघस हँसि कपि ढिग आयो।
भासकर्णहूँ बली क्रुद्ध सूलहिं लै धायो॥ ३४॥
आए कपि-केहरी जसस्वी पैं एकहि सँग।

मास्यो तीछन पट्टिस सों तब प्रघस कीस अँग ॥ ३५ ॥
भासकर्न निसिचर ने कपि पैं सूल चलायो।
बानर-बर तिन आघातन-छत रुधिर नहायो ॥ ३६ ॥
बाल भानु सम दिपत कीस क्रोधहिं जिय धास्यो।
मृग अहि बिटपन सह गिरि को इक सृङ्ग उपास्यो ॥ ३७ ॥
हन्यो बीर कपिकुंजर हनुमत दोऊ निसिचरन।
पिसिकै ता गिरि सृङ्ग भयो तिल तिल तिनको तन ॥ ३८ ॥
तब तिन पाँचो सेना-पति के मरिबे पैं कपि।
मास्यो सेस बची ता थल पैं सब सेना अपि ॥ ३९ ॥
हय हय सों गज गजन रथन रथ जोधन जोधन।
मास्यो कपिबर ने जिमि सहस-नयन ने असुरन ॥ ४० ॥
हय मातङ्ग तुरङ्ग मरे अरु भग्न अन्न रथ।
और मरे निसिचरन रुक्यो सब दिसि तें रन-पथ ॥ ४१ ॥

दोहा।

सह बल बाहन कीस तब सेना-पति-गन मारि।
पुनि तोरन पहुँच्यो जथा काल प्रजन संहारि ॥ ४२ ॥

इति षट्चत्वारिंशः सर्गः।

सप्तचत्वारिंश सर्ग।

हरिगीतिका।

अनुचरन बाहन सह हन्यो कपि पंच सेना-पति जबै
आज्ञा दई दससिर बलोद्धत अन्न जो सम्मुख तबै।
वह होइ रावन-नयन-प्रेरित हेम-चित्रित धनु धरे
बाढ्यो सभा मैं अनल जिमि हवि होम द्विजगन के करे ॥ १ ॥

नरेन्द्र।

चल्यो निसाचर-पुङ्गव कपि पैं रथ पै बैठ्यो राजै
महाबाल रवि सम जु प्रकासित सुबरन जालन छाजै।
तप्त हेम-जालन सों बिरचित तप- सङ्ग्रह करि पायो
आठ मनोजव बाजि जुते जरि रतन धुजा लगायो॥ २॥
सुर असुरन अजेय अनिवारित तडित सरिस नभ धावै।
तरकस सह असि आठ जथा क्रम तोमर सक्ति सुहावै॥
सब बस्तुन पूरित खैंची रवि ससि सी सुबरन-डोरी।
सुर सम बली अच्छ रथ बैठ्यो रवि सम कान्ति अथोरी॥ ३॥

हरिगीतिका।

गज-तुरग-रथ-रव सों भरत सह अचल धरनिहिं ता घरी।
सह सेन पहुँच्यो आइ तोरन-थित जहाँ समरथ हरी॥
थित सम्भ्रमित नासक प्रजा जुग-अन्त पावक सम भयो।
कपि को लख्यो बहु मान सों जब अच्छ ताके ढिग गयो॥ ४॥
कपि-बेग को अरु अरिगनन पैं पराक्रम सों चत हिये।
जुगअन्त रवि सम बढ्यो पुनि निज पौरुषहिं चिन्तन किये॥
रन में न वारन जोग थिर बल प्रगटकर हनुमान को।
सङ्ग्राम हित प्रेरित कियो हनि तीन चोखे बान को॥ ५॥
अरि जयोचित गरवित जितस्रम कपिहिं तबै निहारिकै।
पुनि पुनि निरखि उद्यत भयो तहँ अच्छ सर धनु धारिकै॥
वह हेम कुन्डल निस्कधर कपि-बीर ढिग भयो आवतो।
तिनको अनूप समागमन सुर असुर भ्रम उपजावतो॥ ६॥
रवि मन्द पवन न बहत परवत हिलत धरनी थरथरै।
नभ बिच्चरत कपि अच्छ लरत समुद्र छोभित लखि परै।
तब बीर सुबरन-पुङ्ख-बिरचित सरप से त्रय तीर को।

सन्धान-मोच्छन-लच्छ-पन्डित हन्यो सिर कपि-बीर कों ॥ ७ ॥

नरेन्द्र।

बान लगे सिर बहत रुधिर दृग बक्र कियो कपि ऐसे।
सररूपी किरनन नव ऊग्यो भानु लसत है जैसे ॥
अति उद्दन्ड विचित्र धनुर्धर रावन-सुत रन ठाढ़ो।
लखिकै कपि-पति-मन्त्रीबर रन हित हरषित ह्वै बाढ़ो ॥ ८ ॥
तबै मध्य दिन मैं अति कोपित कपि बल-बीरज-पाग्यो।
नैन-अग्नि-किरनन सों अच्छहिं सबल जरावन लाग्यो ॥
सक्र धनुष सम धनुधर बरसत सर निसिचर घन राजै।
कीस अचल पैं बरसावत सर जिमि घन बरसत छाजै ॥ ९ ॥

हरिगीतिका।

अति चन्डबल सर तेज बीरज अरु पराक्रम रन बढ्यो।
कपि अच्छ कों रन माहिं लखि गरज्यो समर हित मुद मढ्यो ॥
वह क्रुद्ध दर्पित बालपन सों लाल कीने दृगन कों।
रन मैं लख्यो अप्रतिम कपि जिमि कूप आवृत तनन सों ॥ १० ॥
बहु खाइ ताके बान कपि घन सम महा गरजन कस्यो।
नभ उड्यो उत्साहित भयङ्कर झटकि उरु भुज लखि पस्यो ॥
कपि के उड़त अच्छहु प्रतापी उड्यो नभ मैं धाइकै।
सर छावतो बर रथी जिमि घन गिरि सिला बरसाइकै ॥ ११ ॥
तब बायु-सेवित अयन कपि ता सरन निजहिं बचावतो।
सर बीच तें निकरत पवन सम मनोजव छबि छावतो ॥
रन हेतु उत्सुक धनुर्धर नभ छावतो बहु बान सों।
सोंचन लग्यो मारुत-सुवन लखि अच्छ कों बहुमान सों ॥ १२ ॥
सर-बिद्ध-भुज-अन्तर नदत कपि महाबली कुमार सों।
रन माहिं अतिही तत्वविद तब करन लग्यो बिचार कों ॥

यह बाल रवि सम बाल करत महान कर्महिं जो अती ।
निरबहत सब रन-कर्म थिर नहिं या हनन हित मम मती ॥१३॥
यह है महात्मा परमबल रन मैं करत अति सहन कों ।
मुनि-नाग-यच्छन-पूज्य संसय बिना यह निज गुनन सों ॥
मन वृद्ध बल उत्साह सों सम्मुख खड़ो मोकों तके ।
बल सीघ्रताकर यासु मन सुर असुर कम्पित करि सके ॥ १४ ॥
यह नहिं उपेच्छन जोग बिक्रम यासु रन मैं बढ़त है ।
नहिं बढ़त अनल उपेच्छनीय सु मोहिं हननहिं रुचत है ॥
इमि तासु बेगहिं और अपने कर्म कों तर्कन कियो ।
धायो महाबल बेग अति अरु ता हनन मैं मन दियो ॥ १५ ॥

नरेंद्र ।

बहुत भार पैतरन महाजव तासु आठ हय भारे ।
मारुत-सेवित पथ मैं मारुति मारि थप्परन मारे ॥
कपि-पति-मन्त्री सों निर्जित ह्वै तब वह सुरथ नसायो ।
टूटे आसन कूबर हय मरिबे सों भू पैं आयो ॥ १६ ॥

हरिगीतिका ।

तब छाँड़ि रथ लै खड्ग धनु वह थित भयो नभ माहिं यों ।
ऋषि उग्रबीरज तप किये तजि देह स्वर्गहिं जाहिं ज्यों ॥
सेवित पवन नभ अच्छ के इत उत जु घूमत आइकै ।
दृढ़ करि धस्यो पैरन पवन सम बेगधर कपि धाइकै ॥ १७ ॥
जिमि महा सर्पहिं गरुड़ तिमि गहि सहस बार फिराइकै ।
पितु सम बली कपिबर धरनि पैं पटकि दियो घुमाइकै ॥
वह भग्न-उरु-कटि-भुज-पयोधर-अस्थि रुधिर गिराइकै ।
तन-सन्धि उखरीं टुटे बन्धन गिस्यो प्रान गँवाइकै ॥ १८ ॥

कवित्त ।

ताहि मर्दि भूमि पैं महान कपिबीर तबै
रावन के हेतु अति भय उपजाइकै ।
बिसमै अति कीनो सुरेस देव पन्नगहू
चक्रधर मुनि-गनहूँ ता ठाम आइकै ॥
यक्ष-गन प्रानी-गन कपि को लखन लागे
जबै क्षतजात दृग अक्षहिं नसाइकै ।
सुर- राज-पुत्र सम ताहि मारि काल जैसे
प्रज्ञा भो बैठत पुनि तोरन पैं जाइकै ॥ १९ ॥

इति सप्तचत्वारिंशः सर्गः ।

अष्टचत्वारिंश सर्ग ।

हरिगीतिका ।

मारुत-सुवन सों समर के मधि अक्ष जबहीं मरि गयो ।
सुर सरिस इन्द्रजितहिं सरोस निदेस तब दससिर दयो ॥
"सुरपति लख्यो तुव कर्म दुख सुर असुर को तुम देत हो ।
बिधि सों लह्यो बर बर सबहि आयुध धरन मैं बर अहो ॥ १ ॥

रोला ।

तुमरे अस्त्र-बलहिं लहि सब सुरगन मारुत-गन ।
सुर-नायकहू के सह ठहरि सके नहिं कोउ रन ॥ २ ॥
तप-बल भुज-बल सों रच्छित रन के मधि गतस्रम ।
देस-काल-परधान लोक त्रय मैं मति उत्तम ॥ ३ ॥

हरिगीतिका ।

रन-कर्म दुष्कर कोउ न जामैं मन्त्र सह तुव मति अहै ।
तिहुँ लोक मैं कोउ नाहिं जेहि तुव अस्त्र-बल नहिं बिदित है ॥

मम सरिस तुव तप-बल पराक्रम समर-बल दरसावतो।
लहि तुम्हहिँ उद्यत समर हित ध्रुव जय न सोंचहिँ लावतो ॥४॥

दोहा।

जम्बुमालिहू मस्यो अरु किङ्कर भए तमाम
पंच-सेन-अग्रग सचिव-सुतहु गए जम-धाम ॥ ५ ॥

हरिगीतिका।

रथ-नाग-हय-जुत महा सेना सह महोदर मरिगयो
मरि गयो अक्षकुमारहू इनमें न बल तुव सम रह्यो
यह महासेना मरी कपिबल अरु प्रभाव निहारिकै
अनुरूप अपने बेग धारो निज बलहु निरधारि कै ॥ ६ ॥
रन-कौसलहिँ करि जाइकै अब सत्रु के प्रानहिँ हरो
लखि आपनो अरु सत्रु-बल आरम्भ सङ्गर को करो।
लहि प्रबल सेना भागती गुरुसार पविहु न कछु करै
नहिं पवन-सुत को गति-प्रमान न अनल सम सस्त्रन मरै ॥७॥

दोहा।

यह सब खूब बिचारि अरु निज छमता कोँ देखि
करो कर्म छत-रहित निज दिव्य धनुष-बल पेखि ॥ ८ ॥

रोला।

तुम्हहिँ पठाइ रह्यो सो यह नहिँ बर मति मेरी
है मम मति राजन की अरु छत्री गन केरी ॥ ९ ॥
नाना सस्त्रन माहिँ कुसलता पुनि अरि-अरदन
और अवस्यहिँ अपने बिजयहिँ चहिय अनुभवन" ॥ १० ॥

दोहा।

दच्छ-तनय-परभाव सुनि पितु प्रदच्छिना कीन
परम त्वरा सोँ बहुरि निज मन कोँ रन मैं दीन ॥ ११ ॥

रोला।

तबै इन्द्रजित निज मित्रन सोँ ह्वैकै पूजित।
चल्यो समर मैं उत्साहित अरु उद्धत रन हित॥ १२॥
वह श्री-जुत नीरजदल नैन निसाचर-पति-सुत।
चल्यो पर्व मैं सागर सम ह्वै महा तेज-जुत॥ १३॥

हरिगीतिका।

वह गरुड़ सम जब धरे तीछन दन्त पन्नग-रथ चढ्यो।
चलतो भयो सुरपति सरिस तब इन्द्रजित बिक्रम मढ्यो।
वह अस्त्रबिद सस्त्रज्ञबर धनुधर रथी चलतो भयो
रथ चढ्यो मारुत-सुवन हनुमत पास माहिँ पहुँचि गयो॥ १४॥

रोला।

सुनिकै ज्या-रव रथ-निर्घोस ओर धनु को स्वन।
मारुत-सुत हनुमान भयो अति हरषित निज मन॥ १५॥
लै तीखे फल के बानन अरु चाप इन्द्रजित।
पहुँच्यो सम्मुख हनूमान के पुनि रन-पन्डित॥ १६॥

हरिगीतिका।

कलुसित भईं सब दिसा मृग पच्छी बिकृत ह्वै रोवहीँ
चलतो भयो जब इन्द्रजित लहि हरष गहि धनु बानहीं।
आए तहाँ ग्रह पच्छ पन्नग सिद्ध अरु ऋषि-गन सबै।
नभ घेरि रोवत पच्छि-गन अति विकृत ह्वै दुःखित तबै॥ १७॥

रोला।

इन्द्रध्वज रथ कोँ आवत कपि करि अवलोकन।
कीनो नाद महान बेग सोँ बाढ्यो ता छन॥ १८॥
तबै इन्द्रजित दिव्य सुरथ चढ़ि साजि सरासन।
टनकारत बिजुरी के सम प्रकटाइ घोर स्वन॥ १९॥

हरिगीतिका

निस्सङ्क रन में बेगधर अति ते तबै ता थल लरे।
कपि और निसिचर-पति-तनय सुर असुर सम बैरहिँ धरे।
तब महारथ बर बीर धनुधर बेग अति रन में करे।
ता बान-बेग बचावतो कपि बदलि पितु-पथ पैंतरे ॥ २० ॥
तीछन फलन के दीर्घ सुबरन पुङ्ख-जुत बहु बान कों।
लाग्यो चलावन तबै पवि सम धरे बेग महान कों।
सुनिकै तबै कपि भेरि पटह मृदङ्ग रथ के स्वनन कों।
अरु सुनि चढ़ावत धनुष को रव उड़ि चल्यो पुनि गगन कों॥२१॥

रोला।

बानन के अन्तर में आसु कीसबर धावत।
ता छाँड़े बानन के लच्छन निजहिँ बचावत ॥ २२ ॥
पुनि ताके सरबरसा के आगे कपि आयो।
भुजन पसारि पवन-सुत तहँ पैं बहुरि उड़ायो ॥ २३ ॥
समर-कर्म में निपुन तबै ते दोऊ बेगधर।
सब प्रानिन को मनहारी कीनो बर सङ्गर ॥ २४ ॥

हरिगीतिका

नहिँ लखत कपि को छिद्र निसिचर कपि निसाचर को नहीं
बलवान सुर अरु दनुज से ते भिरे दुस्सह हूँ तहीं।
लच्छित न लच्छ लगें अमोघहु सरन बृथा निहारिकै।
चिन्ता कियो मन माहिँ अति तब इन्द्रजीत बिचारिकै ॥ २५ ॥

दोहा

तब निसिचर-पति-तनय निज जिय में यह निरधार।
लखि अवध्यता कीस की पकरन कियो बिचार ॥ २६ ॥
ब्रह्मअस्त्र तब अस्त्रविद-बर दससीस-कुमार।
महातेजधर कीसबर पै कीनो संहार ॥ २७ ॥

यह अबध्य या अस्त्र सों इमि बिचार मन कीन।
महाबाहु मारुत-सुतहिं इन्द्रजीत धरि लीन ॥ २८ ॥

रोला।

बँधिके ता निसिचर के अस्त्र तबै बानरबर।
ह्वैके चेष्टा-रहित बहुरि गिरि पर्‌यो धरनि पर ॥ २९ ॥
पावत नहिं पीड़ा पै बँध्यो अस्त्र के बन्धन।
सोच्यो बहुरि अनुग्रह धाता को अपने मन ॥ ३० ॥
ब्रह्मअस्त्र वह स्वायम्भुव मन्त्रन सों मन्त्रित।
सोच्यो धाता के बर कों मारुत-सुत ने तित ॥ ३१ ॥

हरिगीतिका।

या बन्ध सों नहिं छुटन की मोहिं सक्ति बिधि-परताप सों।
यह अस्त्र बिधिजू को अहै मोहिं चहिय बँधनो आप सों ॥
धाता-अनुग्रह छुटन की पुनि सक्ति निज चिन्तन कियो।
बल अस्त्र को पुनि सोचि बिधि के निदेसहिं आदर दियो ॥३२॥

रोला।

बँध्यो अस्त्र हू सों मोकों भय नहिं उपजत है।
सुरपति चतुरानन पितु-रच्छा देखि परत है ॥ ३३ ॥
दरसत अति गुन जदि पकरैं हूँ मोकों निसिचर।
निसिचर-पति सों बात लेहिं तासों मोकों धर ॥ ३४ ॥

हरिगीतिका।

निसचित कियो अरिदर बिचारक होइ चेष्टा बिनु तहाँ।
ताड़ित भयो धरि निसिचरन सों लग्यो नाद करन महा ॥
इमि देखि चेष्टा- रहित अरिदर कपिहिं ते निसिचर सबै।
बाँधन लगे सन-रज्जु सों अरु बिटप-छालन सों तबै ॥ ३५ ॥
कपि कों रुची निज दुरदसा बल सों पकरिबो ता घरी।
दससीस कौतुक- बस लखन कों मोहिं बोलावै जिय धरी ॥

वह बीर-बर बन्धन-परस सोँ अस्त्र सोँ ता छुटि गयो।
वह अस्त्र बन्धन अन्य बन्धन परस होत वृथा भयो॥ ३६॥
तब इन्द्रजित द्रुम चीर बाँध्यो कपिहिँ लखि सोँचन लाग्यो
यह मुक्त बन्धहु सोँ जनावत अस्त्र-बन्ध जथा लग्यो॥
करि दियो महा अनर्थ सब निसिचरन ने सोँच्यो नहीँ।
यह अस्त्र-बन्धन छुटत दूजो बन्ध परसन होतहीँ॥ ३७॥

रोला।

जानत जनु नहिँ निजहिँ अस्त्र सोँ छूट्यो कपिबर।
खेँचत पीडा देहिँ बाँधिकै ते सब निसिचर॥ ३८॥
क्रूर निसिचरन के मूकन की मार खात अति।
खेँचि चले लै ताकोँ निसिचर जहँ निसिचर-पति॥ ३९॥

दोहा।

बँध्यो छाल सोँ अस्त्र सोँ छूट्यो कपिहिँ निहारि।
मेघनाद लै चलो कपि बैठ्यो जहाँ सुरारि॥ ४०॥

रोला।

मत्त मतङ्ग सरिस यह बानर-बीर बँधायो।
निसिचर-गन ने निसिचरेस कोँ लाइ देखायो॥ ४१॥
का कारन सो आयो को यह काको आस्रित।
इमि आपुस मैँ पूछन लागे सब निसिचर तित॥ ४२॥
याहि जरावैँ भिलि कै खावैँ अरु धरि मारैँ।
क्रुद्ध निसाचर आपुस मैँ इमि बचन उचारैँ॥ ४३॥
चलिकै मारग निसिचर-पति-पद पास लखाए।
लख्यो वृद्ध मन्त्रिन अरु गृह मैँ रतन जराए॥ ४४॥
महातेजधर कपिबर पुनि निरख्योँ रावन कोँ।
इत उत खैँचो जात कराल निसाचर-गन सोँ॥ ४५॥

निसिचर-नायक हू को तहँ देख्यो कपिसत्तम ।
जुक्त तेज अरु बल सों तपत प्रभाकर के सम ॥ ४६ ॥

नरेन्द्र ।

फेरत रिसि बस लाल दृगन निज दससिर कपिहिं निहारी ।
वृद्ध सील कुल में थित मन्त्रिन आज्ञा तबै प्रचारी ॥
पूछ्यो काज-मूल कह कैान प्रयोजन सों तू आयो ।
कपि-पति ढिग सों दूत होइ आयो कपि तबै बतायो ॥ ४७ ॥

इत्यष्टचत्वारिंशः सर्गः ।

एकोनपंचाश सर्ग ।

रोला ।

तबै भीमबल कपि बिस्मत ह्वै ता कर्मन सों ।
लख्यो निसाचर-पति को क्रोध-अरुन नैनन सों ॥ १ ॥
महामूल सुबरन सों निर्मित अतिसय भ्राजत ।
मुक्त-जाल सों सोभित मुकुट धरे छबि छाजत ॥ २ ॥
बहु अमोल मनि अरु बर हीरे लसैं जराए ।
मन सों मनु निर्मित सुबरन-आभरन धराए ॥ ३ ॥
धरे महनी बसन बर चन्दन लाल लगाए ।
विबिध त्रिपुन्ड आदि तन ऊपर लगे सोहाए ॥ ४ ॥
अरुन बसनधर अति बिचित्र लखि परत भयङ्कर ।
दीपित तीछन दन्त-राजि अरु लम्ब ओंठधर ॥ ५ ॥
दस मस्तकन लसत वह बीर महाबल कैसे ।
नाना ब्याल भरे सिखरन सों मन्दर जैसे ॥ ६ ॥
नीलांजन-चय सरिस हार धारे उर उत्तम ।
पूरन ससिमुख लसत बालरबि-जुक्त जलद सम ॥ ७ ॥

उत्तम चन्दन-लिप्त भुजन केयूर धराए ।
पंच बदन अहि से बाहुन अङ्गद छबि छाए ॥ ८ ॥
रतन जरिके चित्रित दीरघ फटिक- बिनिर्मित ।
बर आस्तरन बिछे बर आसन के ऊपर थित ॥ ६ ॥
अतिहि अलङ्कृत बालब्यजन कर धरि प्रमदा-गन ।
खरी होइके चारहु ओर रहीं करि सेवन ॥ १० ॥
महापार्श्व दुर्धर प्रहस्त निसिचर निकुम्भबर ।
मन्त्री मन्त्रन के तत्वज्ञ लसैं ता थल पर ॥ ११ ॥
तिन चारन सों घिरयो भयो बैठ्यो बलदर्पित ।
मानहुँ सकल लोक ह्वै चार सागरन सों वृत ॥ १२ ॥
अरु सुभचिन्तक मन्त्र-तत्वज्ञाता मन्त्रिन सों ।
जिमि अमरन सों सुरपति तिमि आस्वासित तिनसों ॥ १३ ॥
निरख्यो अमित तेज निसिचर-पति कों कपिबर तित ।
मनहुँ बारि सह बारिद मेरु-सिखर पै सोभित ॥ १४ ॥
भीमपराक्रम तिन निसिचर-गन सों ह्वै पीड़ित ।
निरख्यो निसिचर-पति कों ह्वै मन मैं अति बिस्मित ॥ १५ ॥
इमि भ्राजत निसिचर-नायक कों करि अवलोकन ।
तासु तेज सों मोहित ह्वै यह कपि सोच्यो मन ॥ १६ ॥
अहो अहो धीरज बल रूप कान्ति पुनी याकी ।
सब लच्छन-जुक्तता अहो कैसी पुनी याकी ॥ १७ ॥
होत न बली अधर्म निसाचर-नायक तो यह ।
होतो सुरपति को त्राता सुरलोकहु के सह ॥ १८ ॥
याके क्रूर नृसंस लोक-कुत्सित कर्मन सों ।
अमर दानवन के सह है भय सब लोकन कों ॥ १९ ॥

बरवै।

जगत घोर सागर कों निसिचर-नाह।
एक करन को राखत है उत्साह ॥ २० ॥
इमि बहु चिन्ता किय कपिवर मतिमान।
लखि निसिचर-पति को परभाव महान। २१ ॥

इत्येकोनपंचाशः सर्गः।

पंचाश सर्ग।

रोला।

महाबहु अरु पिङ्गनयन कपि ढिग निरखन करि।
लोक-रोआवन रावन महा रोस जिय में भरि ॥ १ ॥
तेजस्वी कपि कों लखि जिय में सङ्का लायो।
का आपहि नन्दी भगवान अहै इत आयो ॥ २ ॥
हँसत मोहिं जाने सिवगिरि पैं साप दियो है।
सोइ कपि रूप धरे वा बानासुर आयो है ॥ ३ ॥
तब प्रहस्त मन्त्रिहिं रिसि-अरुन-नयन रावन वह।
कालयुक्त बहु अर्थन-पूरित कह्यो बचन यह ॥ ४ ॥
"पूछो या दुष्टात्मा सों को भेज्यो याने।
क्यों तरज्यो निसिचरन बिपिन क्यों नास्यो याने ॥ ५ ॥
अप्रधृष्य मम नगरिहिं आवन को का कारन।
आइ इहाँ पै जुद्ध मचावन को का कारन" ॥ ६ ॥
सुनि रावन-बचनहिं बोल्यो प्रहस्त मन्त्रीवर।
"आस्वासन जिय लाउ न कपि तू निज मन मैं डर ॥ ७ ॥
भेजो जो तू सुरपति सों मोहिं ठीक बतैहै।
तो मन मैं भय लाउ न बानर तू छुटि जैहै ॥ ८ ॥

धनपति जम अथवा जलपति सों तू भेज्यो है।
जो यह रूप धारि या नगरी मैं प्रविस्यो है॥ ९॥
कै भेज्यो है विष्णु बिजय-इच्छा जिय लाई।
बानर को तुव तेज न केवल रूप लखाई॥ १०॥
छुटि जैहै कपि जो करिहै जथार्थ तू भाषन।
जो असत्य कहिहै तो है दुर्लभ तुव जीवन॥ ११॥
अथवा जो रावन-आलय प्रविसन को कारन"।
इमि सुनि कपिबर रावन सों कीनो उच्चारन॥ १२॥
"मैं न बरुन सों सुरपति सों वा जम सो प्रेषित।
नाहिं धनद को सखा न नारायन सों प्रेरित॥ १३॥
यही जाति मेरी मैंहूं बानर इत आयो।
निसिचर-पति के दरसन हित सो दुर्लभ पायो॥ १४॥
नास्यो बन मैंने निसिचर-पति के दरसन हित।
तब ते बली निसाचर जुद्ध चहत आए तित॥ १५॥
निज तन-रच्छन के हित मैंने कियो लराई।
सुर असुरन के अस्त्र-पास नहिं सकत बँधाई॥ १६॥

दोहा।

लह्यो पितामह सों अहै मैंनेहुं यह बरदान।
बँध्यो अस्त्र सों रावनहिं लखिबो जिय मे ठान॥ १७॥

रोला।

छुटि कै अस्त्रहु सों पै बँधि निसिचर-समाज सों।
आयो तुमरे पास कोऊ मैं राम-काज सों॥ १८॥
अब जिय जानि दूत मोहिं अतिबल रघुनन्दन को।
स्रवन करौ प्रभु तुम मेरे या पथ्य बचन को"॥ १९॥

इति पंचाशः सर्गः।

एकपंचाश सर्ग

रोला ।

ताहि महाबल बलधर बानर बीर निहास्यो ।
ह्वै अव्यग्र अर्थ-जुत तासों वचन उचास्यो ॥ १ ॥
"मैं सुग्रीव सँदेस लेइ तुम्हरे ढिग आयो ।
निसिचरेस तुव भ्रातु कीस-पति कुसल सुनायो ॥ २ ॥
सुनो सँदेस भ्रातु कपि-पति को निसिचर-नायक ।
धर्म अर्थ सों जुक्त बचन सब थल सुखदायक ॥ ३ ॥
दसरथ रथ कुंजर अरु बाजिन को पति नृपबर ।
लोक-पिता अरु बन्धु सुरेस समान तेजधर । ४ ॥
तिनके समरथ महाबाहु जेठे सुत प्रियतर ।
प्रविसे दन्डकबन मैं निकरे पिता-बचन पर ॥ ५ ॥
पत्नी सीता अरु भ्राता लछिमन सँग लैके ।
राम नाम तेजस्वी धर्म पन्थ थित ह्वैके ॥ ६ ॥
जनस्थान मैं तिन पत्नी सिय अहै खोआई ।
महानुभाव बिदेह जनक नृप की जो जाई ॥ ७ ॥
सह भ्राता ता देवी कों खोजत नृप-नन्दन ।
ऋष्यमूक पैं पहुँचे और मिले कपि-पति सन ॥ ८ ॥
कीन प्रतिज्ञा तब सुग्रीव सियहिं खोजन की ।
अरु राघव हू सों सुकंठ कपि-राज लहन की ॥ ९ ॥
तब तिन नृप-नन्दन नै रन मैं बालिहिं मारी ।
सुग्रीवहिं कपि-पति करि दियो राज बैठारी ॥ १० ॥
तुमतो पहिलेहि सों जानत बाली बलवानहिं ।
ताकों तिनने मास्यो रन मैं एकहि बानहिं ॥ ११ ॥

दोहा।

सत्यप्रतिज्ञ सुकंठ वह सिय खोजन में व्यग्र।
बानर-पति बानरन को पठयो दिसन समग्र ॥ १२ ॥

रोला।

ता सिय को अब सत सहस्त्र अरु लाखन बानर।
खोजि रहे हैं सबही दिसि धरनी अरु अंबर ॥ १३ ॥
अनिवारित गति सीघ्र अहैं मारुत सम कोऊ।
महाबली कपिबर हैं बिनता-सुत सम कोऊ ॥ १४ ॥
मैं हनुमान नाम हूँ औरस सुवन पवन को।
आसु लाँघि सत जोजन उदधि सियहिं खोजन को ॥ १५ ॥
तुमको लखिबेहू को हैं। इत पहुँच्यो आई।
घूमत तुम्हरे भवन जानकी मोहिं लखाई ॥ १६ ॥
अर्थ-धर्म-ज्ञाता तुम तप करि लहि ऐस्वर्जेहिं।
महाप्राज्ञ तुमको पर-दार हरन चहिए नहिं ॥ १७ ॥
धर्म-बिरुद्ध मूल-नासक अरु अनरथकारी।
करैं न ऐसो कर्म आप सम प्रज्ञा धारी ॥ १८ ॥
कोप-बिबस रघुनायक अरु छूटे लछिमन सों।
को देवन वा मनुजन माहिं सहै बानन को ॥ १९ ॥
हे नृप तीनहुँ लोकन में नहिं कोउ दरसाई।
करि बिरोध राघव सों जौन रहै सुख पाई ॥ २० ॥
सो त्रिकाल-हित धर्म-अर्थ-अनुयायी मेरो।
मानि बचन अब नर-केहरि को जानकि फेरो ॥ २१ ॥
लख्यो सियहिं सो मोको भयो लाभ दुर्लभ अति।
याके उत्तर सेस काज अब जानै रघुपति ॥ २२ ॥
निरख्यो मैंने सोक-परायनि जनक-कुमारी।

नहिं समुझौ तुव गृह पन्नगी पंच मुख वारी ॥ २३ ॥
सब सुर अमरहु सकत न याकों कबहुँ पचाई।
जिमि बल सों नहिं अन्न पचत है गरल मिलाई ॥ २४ ॥
जो तप करिकै तुमने बहु ऐस्वर्जहिं पायो।
अस निज दीरघ जीवन कों नहिं चहिय नसायो ॥ २५ ॥
जो सुर असुरन निज अबध्यता अहो बिचारत।
ताहू मैं इक हेतु बड़ो मै अहौं निहारत ॥ २६ ॥
नहिं सुग्रीव देव नहिं यक्ष और नहिं निसिचर
रामचन्द्र हैं मनुज और सुग्रीवहु बानर ॥ २७ ॥
हे निसिचर-नायक तुम सोंचो ये कारन सब।
हे राजा इनसों तुम प्रान बचैहो किमि अब ॥ २८ ॥
उत्कट अधरम-फल मैं जुक्त होति मति जाकी।
पूरब-अर्जित धर्म करत नहिं रच्छा ताकी ॥ २९ ॥
सो या धर्म-फलहिं निसिचय तुमने है पायो।
आसुहिं अब अधर्म फलहू तुमको दरसायो ॥ ३० ॥
जनस्थान मैं बध अरु बाली-बधहिं बिचारो।
राम-सुकंठ-सख्य गुनि पुनि निज हित निरधारो ॥ ३१ ॥
मैं एकहि स्यन्दन गज बाजि सहित या लङ्कहिं।
नासि सकत पै मम स्वामी की अनुमति है नहिं ॥ ३२ ॥
कपि-गन के ढिग कीन प्रतिज्ञा है रघुनन्दन।
अरि-गन-उत्सादन जिन कीनो सीतहिं धरसन ॥ ३३ ॥
करिकै राघव को अपकार स्वयम सुर-नायक।
पाइ सकत नहिं सुख तुमसे जन हैं केहि लायक ॥ ३४ ॥
जाहि जानकी जानत जोहै तुव गृह-बासिनि।
समुझौ ताको कालरात्रि सब लङ्का-नासिनि ॥ ३५ ॥

जानकि रूप काल-पासहिँ निज गर न लगाओ।
अपुने आपहिँ कुसल-बिचार हिये निज लाओ॥ ३६॥
राम-कोप-प्रज्ज्वलित सीय के कोप जराई।
जरत अटा बीथिन सह परिहै पुरी लखाई॥ ३७॥
अपने मन्त्री मित्र भ्रातु सुत हितू जाति-जन।
और न करौ नास निज लङ्कहिँ दारन भोगन॥ ३८॥
सुनौ निसाचर-नायक सत्य बचन यह मेरो।
राम-दास चर को बिसेस करि बानर केरो॥ ३९॥
सह चर अचर प्रानि-गन के बिनासि सब लोकन।
राम महाजसधारी बहुरि सकत करि सिरजन॥ ४०॥
देव असुर नृप यक्ष निसाचर अरु उरगन मैँ।
मृग-गन नागन बिद्याधर अरु गन्धर्वन मैं॥ ४१॥
सबै सिद्ध किन्नरन और पच्छी-गन माहीँ।
सब प्रानिन मैँ सब थल सबै काल कोउ नाहीँ॥ ४२॥
जोन लरै नारायन सम बलवान राम सोँ।
करि तिन लोकन के पति के बिपरीत काम कोँ॥ ४३॥

बरवै।

नृप-केहरि राघव को अप्रिय काज।
करि दुर्लभ तुव जीवन निसचर-राज॥ ४४॥

दोहा

यक्ष देव विद्याधरहु नाग दैत्य गन्धर्व।
तीन लोक-पति राम सोँ सकैँ न लरि रन सर्व॥ ४५॥
आत्मजोनि मुखचार बिधि त्रिपुरान्तक त्रय नैन।
इन्द्रहु सम्मुख राम के रन मैँ ठहरि सकैँ न"॥ ४६॥
बोलत सिष्ट अदीन सुनि कपि की अप्रिय बात।

कुपित भारि दृग सीसदस कह्यो करो कपि-घात ॥ ७० ॥

इत्येकपंचाशः सर्गः।

द्विपंचाश सर्ग।

रोला।

सुनिकै रावन महानुभाव कीस-बचनन कों।
कोप-मूरछित होइ निदेस दियो मारन को ॥ १ ॥
दुष्ट निसाचर-नायक भाष्यो जब कपि-मारन।
सुनि कपि-दूतपनो नहिं सम्मति दियो बिभीषन ॥ २ ॥
सुनि कपि-बध-आज्ञा रावन कों कुपित निहारी।
कारजकर्ता निज मन में का करम बिचारी ॥ ३ ॥
तब बिचार सों निस्चय करि यह मति निरधार्यो।
बचन-बिसारद रावन को हित बचन उचार्यो ॥ ४ ॥

दोहा।

"करो छमा रिसि त्यागि हूँ सान्त सुनो मम बैन।
पूरब-पर-ज्ञाता नृपति कबहूँ दूत बधैं न ॥ ५ ॥

रोला।

है नृप-धर्म-बिरुद्ध लोक-निन्दा को कारन।
है अजोग तुमसे बीरन हित दूतहिं मारन ॥ ६ ॥
राज-धर्म में पटु धर्मज्ञ कृतज्ञ धर्मवित।
प्रानिन के पूर्वापर जानन में तुम पन्डित ॥ ७ ॥
होयँ रोस के बस जो आपहु सरिस बिचच्छन।
तौ केवल है स्रमहीं करन सास्त्र-परिसीलन ॥ ८ ॥
तावो हूँ प्रसन्न अरि के घाती निसिचर-पति।
देहु दंड दूतहिं पुनि जोग्य अजोग्य आनि मति" ॥ ९ ॥
निसिचर-पति दससीस बिभीषन-बैन स्रवन करि।

बोल्यो बचन बहुरि मन माहिँ कोप अतिसय भरि ॥ १० ॥
" नहिँ पापिन के मारन माहिँ पाप अरि-अरदन ।
तासोँ पापी कपि कोँ मैं मारूँगो या छन " ॥ ११ ॥
अधरम-मूल असज्जन-सेवित दुष्ट बचन सुनि ।
कह्यो बिभीषन बुद्धिमान-बर जथा उचित पुनि ॥ १२ ॥

हरिगीतिका ।

" निसिचर-पती सुनु धर्म अर्थन-तत्व मेरे बचन कोँ ।
सज्जन न उचित बतावहीं सब ठाम चर के बधन कोँ ॥
निसिचै अहै यह अरि महा अरु बहुत तुव अप्रिय कियो ।
नहिँ दूत बध्य कदापि हैं बहु दंड जो चाहै दियो ॥ १३ ॥
सिर मूड़ि कोड़ा मारि करि तन-भङ्ग चिन्ह मिटावनो ।
ये दंड भाष्यो दूत कोँ पै सुन्यो है नहिँ मारनो
किमि धर्म अर्थ-बिनीत मति पटु पूर्व पर के ज्ञान मैं ।
तुम सरिस होवैं कोप-बस नहिँ कोप-बस बलवान हैं ॥ १४ ॥
नहिँ लोक वृत्तन धर्म मैं नहिँ सास्त्र-ग्रहनहुँ मे कोऊ ।
नहिँ बीर तुम्हरे सरिस बर है सुर असुरनहुँ मैं कोऊ ॥
दुर्जय अहो उत्साहि बली मनस्वि देवासुरन सोँ ।
बहु बार तुम जीत्यो समर मैं देव-गन अरु नृपन कोँ ॥ १५ ॥

रोला ।

इमि सुर-दनुजन-अरी बीर अरु अजित तुम्हारो ।
को प्रतिकूल मनहुँ सोँ करिकै गयो न मारो ॥ १६ ॥
कपि कोँ मारन मैं कोउ गुन नहिँ मोहिँ लखायो ।
देहु दन्ड तिनकोँ जिनने है याहि पठायो ॥ १७ ॥
यह असाधु वा साधु अहै भेज्यो औरन के ।
कहत और को कहनो नहिँ है जोग बधन के ॥ १८ ॥

या मरिबे पैं लखत न कोउ दूजो नभचारी ।
तासों या बध-जतन करौ नहिं पर पुरहारी ॥ १९ ॥

बरवै ।

इन्द्र सहित देवन सों निसिचर-रत्न ।
रहौ सचेत आप अब करिके जत्न ॥ २० ॥

हरिगीतिका ।

नहिं लखत कोऊ अन्य याके मरे जो नृप-सुतन कों ।
लावै उभारि बिरुद्ध तुव दुर्विनय तिनकों लरन कों ।
सुर-असुर-दुर्जय तुम्हैं नहि निसिचरन को जिय तोड़नो ।
चहिए जु बिक्रमवान रन-उत्साह जिनके मन ठनो ॥ २१ ॥
हैं हित समाहित सूर ये पुनि जात बंस महान मैं ।
कोपन मनस्वी और आयुध-धरन माहिं प्रधान हैं ॥
आदेस लहि तुव सेन को इक भाग तहँ पै जाइके ।
तिन मूढ़ नृप-पुत्रन हनै परभाव तुव प्रकटाइ कै" ॥ २२ ॥

दोहा ।

सुनिकै निसिचर-अधिप इमि भ्रातु बिभीषन बानि ।
महाबली सुरलोक-अरि लीनो मन मैं मानि ॥ २३ ॥

इति द्विपंचाशः सर्गः ।

त्रिपंचाश सर्ग ।

रोला ।

महानुभाव बिभीषन बानी सुनि दसकन्धर ।
देस काल के हित गुनिकै दीनो पुनि उत्तर ॥ १ ॥
" कह्यो जथारथ तुमने निन्दित दूत-बधन है ।
बध अतिरिक्त कियो चहिए याको सासन पै ॥ २ ॥

बानर-गन को प्यारो भूषन पूँछ कहावै।
ताहि जराओ तासों हीन होइ यह जावै ॥ ३ ॥
अङ्ग भङ्ग कृत जामैं याहि करैं अवलोकन।
याके मित्र सुजाति सुहृद अरु सब बान्धव-गन ॥ ४ ॥
कह्यो निसाचर-पति "पावक या पुच्छ लगाओ।
हाटन अरु सगरी नगरी मैं याहि घुमाओ" ॥ ५ ॥
सुनिकै यह आदेस निसाचर-गन रिसि-साने।
ताके पुच्छ लपेटन लागे बसन पुराने ॥ ६ ॥
पुच्छ लपेटन सों बाढ्यो बानरबर ताळन।
सूखे ईधंन लहिकै बन मैं जथा हुतासन ॥ ७ ॥
सींचि तैल सों पुनि पावक लगाइकै बास्यो।
जरत पुच्छही सों कपिबर ने तिनकों मास्यो ॥ ८ ॥
भस्यो रोस अरु अमरष बाल प्रभाकर मुख कपि।
बँध्यो क्रूर तिन जातुधान-गन सों तहँ पुनरपि ॥ ९ ॥
धाए बाल वृद्ध तिय कौतूहल बस सहसन।
बद्ध होइ तब बीर बिचास्यो यह अपने मन ॥ १० ॥
सकत बाँधि नहिँ कबहूँ मोकों ये निसिचारी।
तोरि बन्धनहिँ उछरि सकत मैं इनकों मारी ॥ ११ ॥
जो स्वामी-सासन सों घूमत निज स्वामी हित।
मोहिँ ये दुष्ट बाँधि लैजाहिँ तो भयो न प्रतिकृत ॥ १२ ॥
सब निसिचर-गन पै मैं इकलेहि भारी रन मैं।
राम काज हित यह सब सहन करत या छन मैं ॥ १३ ॥
पुनि अब ये सब मोकों लङ्का माहिँ घुमैहैं।
राति लखे नहिँ दुर्ग-कर्म अब मोहिँ लखैहैं ॥ १४ ॥
चहिए मोहिँ अवसहिँ दिन मैं लङ्कहिँ अवलोकन ॥

अनल लगाइ पूँछ ये भलइ करैं मम बन्धन ॥ १५ ॥
पीड़ा देहिं निसाचर पै मम मन को नहिं स्रम।
तब ते धरिकै गुप्तरूप बलधर कपि सत्तम ॥ १६ ॥
होइ मुदित निज मन मैं अति आँनद सों पागे।
भेरी संख नदत निज कर्म सुनावन लागे ॥ १७ ॥
क्रूर निसाचर कपिहिं पुरी मैं लगे घुमावन।
तिनसों बँध्यो जात जिय सुख मान्यो अरि अरादन ॥ १८ ॥
दोहा।
महापुरी मैं निसिचरन के घूम्यो हनुमान।
निरख्यो जहँ तहँ सोहते परम बिचित्र बिमान ॥ १९ ॥
लखत गलिन गृह-मध्य अरु भूमै छिपीं सुरङ्ग।
बहु चौराहन अरु गृहन ढिग चौतरे सुढङ्ग ॥ २० ॥
रोला।
सकरी गलिन माहिं अरु ढिग अनेक महलन के।
लगे घुमावन चौराहन अरु राज-पथन मे ॥ २१ ॥
है यह दूत करत इमि ते निसिचर-गन भाषन।
कपि के पुच्छ-अग्र मैं लाग्यो जबहिं हुतासन ॥ २२ ॥
विकृत नयनि निसिचरि सिय-अप्रिय लगीं सुनावन।
'बोल्यो जो तोसों वह साखा मृग अरुनानन ॥ २३ ॥
ताहि पुच्छ मैं अनल लगाइ घुमावत हैं अब।
सुनि निज हरन समान क्रूर तिनके बचनहिं तब ॥ २४ ॥
सोक-तप्त ह्वै बैदेही पावक कों ध्याई।
कुसल-कामना कपिबर की निज मन मैं लाई ॥ २५ ॥
दीरघनैनी बिनय करन पावक सों लागी।
जो तप कीन औार मैं पति- सुस्रूषा लागी ॥ २६ ॥

एकपति व्रत-मम तौ सीतल होहु कीस हित ।
तीछन-अर्चि-प्रदच्छिन सिखा हुतासन तब तित ॥ २७ ॥

दोहा ।

जस्यो अनल मृगनयनि को मनु सुभ करत बखान ।
पुच्छ-अग्र-पावक लग्यो हनुमत-पितु पवमान ॥ २८ ॥

बरवै ।

बह्यो करत जनु सिय को स्वास्थ्य प्रदान ।
ह्वै के सीतल मलयज पवन समान ॥ २९ ॥

रोला ॥

जरत पुच्छ के बानरबर जिय चिन्ता लायो ।
दीप्त अग्नि यह का कारन सों मोहिं न जरायो ॥ ३० ॥
देत न दुख मोकों पै महा ज्वाल दरसाई ।
पुच्छ-अग्र मैं हिम सम सीतल परत जनाई ॥ ३१ ॥
अथवा है यह प्रकट उड़त कीनो अवलोकन ।
अचरज जलनिध मैं गिरि राम प्रभावहि कारन ॥ ३२ ॥
रामहिं आदर देत जलधि मैनाक जबै इमि ।
तौ पावक राघव को आदर करिहै नहिं किमि ॥ ३३ ॥
सीता के प्रभाव अरु राघव तेज घने सो ।
मोहिं न जरावत पावक मम पितु-मित्र पने सों ॥ ३४ ॥
पुनि घरीक सोंच्यो अपने मन मैं कपि कुंजर ।
क्यों ऐसे मोकों बाँधैं ये अधम निसाचर ॥ ३५ ॥
रहत पराक्रम के या बदलो लेन चहिय अब ।
इमि बिचारिकै तोरि दिए बन्धन कपिबर तब ॥ ३६ ॥
उड्यो बेग सों बहुरि निनाद भयङ्कर कीनो ।
निसिचर-भीर-रहित पुर द्वारे पैं बल भीनो ॥ ३७ ॥

उन्नत पर्वत-शृङ्ग सरिस पैं चढ्यो पवन-सुत ।
पुनि छन मैं ह्वै अपर सैल के सम बिक्रम-जुत ॥ ३८ ॥
अति लघु रूप होइ दीने सब बन्धन तोरी ।
निकरि बन्ध सों श्री-जुत गिरि सम भयो बहोरी ॥ ३९ ॥
देख्यो परिघ लग्यो तोरन मैं निरखत उत इत ।
लीनो ताको महाबाहु जो लोह-बिनिर्मित ॥ ४० ॥

बरवै ।

तब निसाचरन मारुत-सुत हनुमान ।
ठोंकि ठोंकिकै हरिबे लाग्यो प्रान ॥ ४१ ॥

दोहा ।

लख्यो लङ्क पुनि चन्डबल करि रन मैं तिन नास ।
अनल-जुक्त निज पुच्छ सों करि रबि सरिस प्रकास ॥

इति त्रिपंचाशः सर्गः ।

चतुष्पंचाश सर्ग ।

रोला ।

लखि लँकहिं कपि-बीर मनोरथ निज जिय आन्यो ।
बढ्यो उछाह सेस कारज पुनि मन मैं ठान्यो ॥ १ ॥
रह्यो कौन करतव्य सेस अब मोको या थल ।
जासों बहुरि होइँ सन्तापित ये निसिचर खल ॥ २ ॥
एक भाग सेना हनि निसिचर बरन हन्यो है ।
नास कियो काननहिं दुर्ग पै सेस बच्यो है ॥ ३ ॥
दुर्ग नासिबे सों मम कारज सकल होइगो ।
अल्प जतन हीं सों मम स्रम अब सफल होइगो ॥ ४ ॥
जो मम पुच्छ माहिं यह दीपित अहै हुतासन ।

करन चहिय इन बर भवनन सों ताको तर्पन ॥ ५ ॥
दीप्त पुच्छ सों तब जिमि तड़िता के सह जलधर।
लङ्का के भवनन पैं घूमन लाग्यो कपिबर ॥ ६ ॥
निसिचर-गन के गृह सों गृह पै अरु बागन कों।
लखत चल्यो भवनन पैं घूमत त्रास न मन कों ॥ ७ ॥
उछरि बेगधर तब प्रहस्त के भवनहिं जाई।
पवन समान बली कपि तामैं अनल लगाई ॥ ८ ॥
महापार्श्व के भवन बहुरि पहुँच्यो कपि सत्तम।
दीनो अनल लगाइ तहाँ कालाग्नि-सिखा सम ॥ ९ ॥
पहुँच्यो पुनि बानरबर वज्रदन्त के घर पर।
परम तेजधर बहुरि गयो सुक सारन के घर ॥ १० ॥
मेघनाद के भवनहिं पुनि कपि-बीर जरायो।
जम्बुमालि अरु माली के घर अनल लगायो ॥ ११ ॥
सूर्यशत्रु अरु रश्मिकेतु रजनीचर-गन के।
पहुँच्यो गृह रोमस लघुकर्न और दन्तन के ॥ १२ ॥
युद्धमत्त ध्वजग्रीव मत्त निसिचर-घर पैं अपि।
विद्युजिह्व गजमुख अरु घोर भवन कूद्यो कपि ॥ १३ ॥
पहुँच्यो मकरनयन अरु कुम्भकर्न महलन पैं।
शोनिताक्ष विकराल विशालक्षु के भवनन पैं ॥ १४ ॥
कुम्भ निकुम्भ और नरअन्तक उत्पाती के।
पहुँच्यो गृह पैं यज्ञशत्रु मख-आराती के ॥ १५ ॥
परमतेजधर एक विभीषन भवन बचाई।
क्रम सों इन सब के घर पावक दियो लगाई ॥ १६ ॥
तिन तिन महामूल भवनन मैं अति जसधारी।
कपि-कुंजर इन धनमानन की सम्पति जारी ॥ १७ ॥

सबके भवनहिं डाँकि तबै बानर-बर बलधर।
आयो श्री-जुत निसिचर-पति दससीस-भवन पर॥ १८॥
तब ता गृहबर पैं जो नाना रतनन सोहत।
नाना मङ्गल लसत मेरु मन्दर सम उन्नत॥ १९॥
पुच्छ-अग्र के दीप्त अनल कों तापैं दीनो।
हनूमान जुगअन्त जलद सम नादहिं कीनो॥ २०॥

दोहा।

बायु-जोग लहि तब अनल धाओ बेग महान।
लाग्यो बढ़िबे धधकिकै पुनि कालाग्नि समान॥ २१॥

रोला।

ता प्रदीप्त अनलहिं मारुत सब गृह पहुँचावत।
ते गृह जे कंचन-जालन मुक्तन छबि छावत॥ २२॥
नाना रतनन भरे लसत सब टूटन लागे।
तिनके जाल टूटि बसुधा पैं बिखरन लागे॥ २३॥
पुन्यछीन जिमि गिरैं भवन नभ सों सिद्धन के।
लगे तुमुल रव होन धावते निसिचर-गन के॥ २४॥
गृह-रच्छा हित श्री उछाह सों हत घबराए।
बानररूप अनल हा इमि रव तहाँ सुनाए॥ २५॥
क्रन्दन करत गिरीं पय पीवत सिसु सह नारी।
कोउ लट खोले गिरीं गृहन सों पावक जारी॥ २६॥
जिमि मेघन सों तड़िता गिरत लसैं धरनी पर।
ओर रजत बिद्रुम पन्ने हीरे मुक्ताबर॥ २७॥
पिघलि पिघलि कै गिरन लगे भवन सों ता छन।
तृप्त न होत दारु अरु तृन सों जथा हुतासन॥ २८॥
तिमि न तृप्त हनुमान होत निसिचरन बधन सों।

भूमि न तृप्त होति कपि मारे निसिचर-गन सों ॥ २९ ॥
महानुभाव बेगधर हनुमत लङ्क जरायो।
जैसे पूरब चन्द्रभाल ने त्रिपुर जरायो ॥ ३० ॥

हरिगीतिका।

तब लङ्क-पुर-गिरि-अग्र पै अतिही भयङ्कर अनल ह्वै।
फैलाइ ज्वाला-मण्डलहिं भभकन लग्यो अति प्रबल ह्वै ॥
जुग अन्त कालानल सरिस लहि पवन अम्बर लौं गयो।
लहि भवन मैं निसिचर-सरीर-घृतहिं बिधूम बढ़त भयो ॥३१॥
तब घेरि लङ्कहिं कोटि रबि सम तेज निज फैलावतो।
ब्रह्माण्ड फोरत मनु अनल पबि सम स्वनन प्रकटावतो ॥
कुसुमित सुकिंसुक बिपिन सम रूखी प्रभा परकासतो।
सह धूम भभकत नील अम्बुज बरन घन सम भासतो ॥ ३२ ॥
यह इन्द्र सुरपति बरुन जम वा पवन आयो हाल है।
रबि रुद्र पावक धनद ससि नहिं कीस आपहि काल है ॥
कै सब-पितामह चतुर्मुख बिधि कोप निज प्रकटाएऊ।
सोइ धारि बानर-रूप निसिचर-गन बधन हित आएऊ ॥ ३३ ॥
यह बिष्णु को कै तेज मायारूप भो इत आवतो।
कपि-रूप धरि अव्यक्त एक अचिन्त्य जौन कहावतो ॥
इमि आइ बहु अनेक निसिचर लगे कहन पुकारिकै।
सह गृहन बिटपन प्रानि-गन के भस्म पुरिहिं निहारिकै ॥ ३४ ॥
वह लङ्क सहसा अस्व रथ मातङ्ग निसिचर सह जरी।
सह पच्छि मृग तब जरि कियो अति तुमुल रोदन ता घरी ॥
हा तात सुत हा कान्त प्रिय पति छय सुकृत अब ह्वै गयो।
इमि कहत रजनीचरन को अति घोर सोर तहाँ भयो ॥ ३५ ॥
भरि छिन्न लोचन मरे बीरन अनल-ज्वाला घिरि गई।

हनुमान-रिषि-बल नसी मानहुँ साप-हत लङ्का भई ॥
सम्भ्रमित त्रस्त निसाचरन भरि लपटि ज्वाला-माल सों।
बिधि-कोप सों मनु जरी निरख्यो लङ्क कपि ता काल यों ॥ ३६ ॥
तरुरत्न-सङ्कुल बनहिं हति हनि निसिचरन सङ्ग्राम में।
गृह-रत्न मालिनि पुरि जराइ सुकपि लस्यो ता ठाम में ॥
बहु बिटप-पूरित बनहिं अरु बहु जातुधान जराइकै।
मनसों गयो रघुबीर ढिग सब गृहन अनल लगाइकै ॥ ३७ ॥
कपि बीरबर पवमान बेग महामतिहिं लखि मुद पगे।
तब देव-गन मारुत-तनय की स्तुति तहाँ करिबे लगे ॥
सब देव-गन मुनि गन्धरब अहि जीव बिद्याधर तहाँ।
अरु सबै प्रानी-गन लह्यो मन माहिं अपने मुद महा ॥ ३८ ॥
इक गेह के सृङ्गाग्र पैं तहँ बैठिकै हनुमान यों।
दीपित अनल लाङ्गूल सह सोभित किरन-जुत भानु ज्यों ॥
अति तेजधर कपि बन उजारि निसाचरन रन नासिकै।
भीमा पुरी लङ्का जराइ लस्यो प्रभा परकासिकै ॥ ३९ ॥

दोहा।

इमि कपिबर मारुत-सुवन सबही लङ्क जराइ।
निज पुच्छानल को दियो सागर माहिं बुझाइ ॥ ४० ॥
तब सुर-गन गन्धर्व-गन सिद्ध मुनीस्वर आइ।
जरी लङ्क निरखत भए अति बिस्मय जिय लाइ ॥ ४१ ॥

इति चतुष्पंचाशः सर्गः।

पंचपंचाश सर्ग ।

रोला ।

अस्त जरत इमि निसिचर-नगरी करि अवलोकन ।
कपिबर हनूमान तब लाग्यो सोंचन निज मन ॥ १ ॥
भयो त्रास कपिको धिक्कार निजहिँ अति दीनो ।
करि लङ्का को भस्म कहा यह मैने कीनो ॥ २ ॥
अहैं महासय धन्य बुद्धि सों उत्थित कोपहिँ ।
ज्वलित अनल को जिमि जलसों तैसे जे रोकहिँ ॥ ३ ॥
कौन पाप नहिँ करै क्रुद्ध गुरु-गनहूँ मारै ।
क्रुद्ध पुरुस साधुनहूँ सो कटु बचन उचारै ॥ ४ ॥
का अबाच्य का बाच्य कदापि कुपित नहिँ जानहिँ ।
है न अकार्ज अबाच्य कछुहु जग क्रोधी पुरुसहिँ ॥ ५ ॥
जो निज उपजो कोप छमा सों दूर हटावै ।
जिमि अहि जीरन केचुलिहिँ सोई पुरुस कहावै ॥ ६ ॥
धिग दुर्बुद्धि निलज्ज मोहिँ मै हूँ अघकर्त्ता ।
बिनु सोंचे सिय नास्यो हैाँ स्वामी-संहर्ता ॥ ७ ॥
जौ सब नगरी जरत जरी सीता महरानी ।
पै बिनु जाने कियो स्वामि-कारज की हानी ॥ ८ ॥
नास्यो मैने ताकों यह उद्योग जासु हित ।
लङ्कहिँ दाहत मैने कियो न सीतहिँ रच्छित ॥ ९ ॥
सेस काज यह दारुन संसय बिनु है कीनो ।
तैहूं कोप-बिबस मैं मूलहिँ छय करि दीनो ॥ १० ॥
कछु न बच्यो बिनु जरे अवसि जानकी नसाई ।

बच्यो न कोउ लङ्का को थल सब पुरी जराई ॥ ११ ॥
कीनो मैंने प्रज्ञा-भ्रम सों जो या काजहिँ ।
तासों अवसहिँ जीवन-त्याग रुचत मोहिँ आजहिँ ॥ १२ ॥
कै पावक वा बड़वानल-मुख मैं गिरि जाऊँ ।
वा सागर बासी जन्तुन तन अरपि नसाऊँ ॥ १३ ॥
जीवित मैं अब कैसे देखि सकत कपि-राजहिँ ।
वा तिन दोऊ नरसिंहन करि सरबस घातहिँ ॥ १४ ॥
रोस-बिबस ह्वै के मैंने सोइ है दरसायो ।
कपिपन जो अनिवारित लोकन माहिँ कहायो ॥ १५ ॥
धिक राजस-चेष्टा अनरथकारी अनवस्थित ।
ह्वै समरथहू जा बस कियो न सीतहिँ रच्छित ॥ १६ ॥
सिय के मरिबे पैं मरिहैं ते दोऊ भाई ।
तिन मरिबे पैं मरिहैं बन्धुन सह कपिराई ॥ १७ ॥
भरत भ्रातबत्सल जब यह वृत्तान्त सुनैंगे ।
धर्मात्मा सत्रुघ्न सहित तब कब जीवैंगे ॥ १८ ॥
जबै धर्मधर इक्ष्वाकू को कुल नसि जैहै ।
तबै प्रजा सन्ताप सोक सों पीड़ित ह्वैहै ॥ १९ ॥
सो मैं भाग्य-रहित अरु धरमारथ को नासक ।
रोस-दोस सों घिरो अहों सब लोक बिनासक ॥ २० ॥
इमि सोचत कपिबर के बहु निमित्त दरसाए ।
पहिले जिन्हैं लह्यो साच्छात सु पुनि मन आए ॥ २१ ॥
अथवा निज तेजहि सों रच्छित सुन्दरि ऐसे ।
नाहिँ जराइ सकत पावक पावक कों जैसे ॥ २२ ॥
नाहिँ धर्मधर अति तेजस्वी की पत्निहिँ इत ।
छुइ सकत पावक जो निज चरितहिँ सों रच्छित ॥ २३ ॥

बैदेही को सुकृत राम-परभाव जनायो ।
जो सब-दाहक पावक ने मोकों न जरायो ॥ २४ ॥
तीनो भरतादिक भाइन की देवी सम जो ।
किमि बिनास ह्वैहै राघव की प्रानोपम जो ॥ २५ ॥
अथवा सब-दाहक सब थल समरथ अब्यय यह ।
मम पुच्छहिँ न जरायो किमि जारिहै सियहिँ वह ॥ २६ ॥
पुनि सोँच्यो हनुमान होइकै बिस्मित निज मन ।
सुवरननाभ महीधर को जल के मधि दर्सन ॥ २७ ॥
सत्यबाक पति मैँ अनन्यता अरु तप-साधन ।
इन सोँ सियहिँ जराइ सकै न अनल हुतबाहन ॥ २८ ॥
इमि सोँचत महरानी के सुधर्म-आचरनन ।
सुन्यो बचन हनुमान तहाँ भाषत चारन-गन ॥ २९ ॥
"अहो असह्य कर्म यह हनूमान है कीनो ।
तीछन अनल जु भीम निसिचरन घर मैँ दीनो ॥ ३० ॥
आकुल तिय बालक बूढ़े भागत निसिचर खल ।
भर्‌यो पवन गिरि- कन्दर तिमि क्रन्दन-कोलाहल ॥ ३१ ॥
महल अटा तोरन सह नगरी अहै जरायो ।
पै न जरी सिय हम लोगन मन बिस्मय आयो" ॥ ३२ ॥

दोहा ।

इमि मारुत-सुत ने सुन्यो अमृत सम तिन बैन ।
उपज्यो पुनि ता काल मैँ कपि के हिय अति चैन ॥ ३३ ॥
वह निमित्त अनुभूत पुनि बहु कारनन बिचारि ।
ऋषि-बचनन सुनिकै भयो हृष्ट मोद जिय धारि ॥ ३४ ॥
पाइ मनोरथ कीस सुनि अच्छत राज-कुमारि ।
लख्यो बहुरि परतच्छ सिय जिय लौटन निरधारि ॥ ३५ ॥

इति पंचपंचाशः सर्गः ।

षट्पंचाश सर्ग ।

रोला

तब लखि सियहिं सिंसुपा तरु-जड़-ढिग कपिबर थित ।
बोल्यो लखत भाग्य ही सों तोकों अच्छत इत ॥ १ ॥
तबै जात कपि सीता पुनि पुनि अवलोकन करि ।
बोली बानी पवन-सुवन सों स्वामि-नेह भरि ॥ २ ॥
'जो मन आवै तै। इक दिवस रहै। जैहे। कल ।
अरि-अरदन स्रम-रहित होइ बसि कोऊ गुप्त थल ॥ ३ ॥
अल्प भागिनी के। मम कपि तुव पास रहन सों ।
या महान दुख सों है होत मोच्छ इक छन कों ॥ ४ ॥
हे कपि केहरि तेरे या थल पुनि लौटन लौं ।
बिनु सन्देह अहै संसय मेरे प्रानन के। ॥ ५ ॥
सोक न तोहिं लखन के। पुनि करि है मोहिं तापित ।
जब मम परम दुःखिनी के। ह्वैहै कपि दीपित ॥ ६ ॥
और महा संसय यह उपजत है मम मन मैं ।
अहो बीर तेरे सहाय सब बानर-गन मैं ॥ ७ ॥
पार करैंगे किमि दुष्पार परम रत्नाकर ।
कपि-गन की सेना अथवा ते दोऊ नृपबर ॥ ८ ॥
तीनहिं प्रानिन की समरथ सागर लाँघन की ।
तेरी मारुत की अथवा बिनता-नन्दन की ॥ ९ ॥
से। या दुरतिक्रम कारज-नियोग मैं कपिबर ।
सोचे। समाधान का काजबिदन मैं है। बर ॥ १० ॥
तूही एक अहै छम या कारज-साधन मैं ।

अहै पात्र तू ही जसदायक जसहिं लहन मैं" ॥ ११ ॥

दोहा

पर-बल-अर्दन सेन निज भरिकै लङ्का माहिँ ।
होइ सहस तिन के जु मोहिँ श्री राघव लैजाहिँ ॥ १२ ॥
बिक्रमधर रन-सूर के पुनि अनुरुप जु होइ
हे बानर-बर तू करैगो अब जतनहिँ सोइ" ॥ १३ ॥
भरे नेह अरु अर्थ सोँ सुनिकै सिय के बैन ।
दीनो उत्तर सेस तब हनुमत बिक्रम-ऐन ॥ १४ ॥

रोला

"देवि बानरन की सेना को स्वामी कपिबर ।
सत्ववान सुग्रीव कियो निस्चय तुव हितकर ॥ १५ ॥
वह सहसन बानर-गन की कोटिन सोँ ह्वै वृत ।
रजनीचर-गन को नासक आसुहि ऐहै इत ॥ १६ ॥
राम लखन ते दोऊ बीर नरबर इत आई ।
निज बानन सोँ दैहैँ लङ्का पुरी कँपाई ॥ १७ ॥
परिजन के सह श्री रघुबर दससिरहिँ नसैहैँ ।
सुन्दरि तोको अपनी पुरी माहिँ लैजैहैँ ॥ १८ ॥
सो आस्वासन लहौ और जोहौ अब कालहिँ ।
लखिहै रन मैँ मर्‍यो राम सोँ रावन हालहिँ ॥ १९ ॥
पुत्र अमात्य बन्धु-गन सह रावन मरिहै जब ।
ससि सोँ रोहिनि तिमि मिलि है तू राघव सोँ तब ॥ २० ॥
आसु राम अरु बानरबरन सहित इत ऐहैँ ।
जीति जुद्ध मैँ सो तुमरो सब सोक नसैहैँ" ॥ २१ ॥
पवन-सुवन हनुमान सीय को करि आस्वासन ।
जानो मन मैँ ठानि बहुरि करिकै अभिवादन ॥ २२ ॥

मारि निसाचरबरन नाम अपनो सुनाइकै।
करि सिय को आस्वासन अरु अति बल देखाइ कै॥ २३॥
करि नगरिहिँ आकुल अरु दससीसहिँ बंचन करि।
घोर बलहिँ दरसाइ जानकिहिँ अभिवादन करि॥ २४॥
पुनि सागर के मधि सोँ लौटन को मन कीने।
कपि-केहरि स्वामी के दरसनमेँ चित दीने॥ २५॥
चढ्यो अरिष्ट महीधर-बर पैँ तब अरिघाती।
जापैँ तुङ्ग पद्मकन जुत बन-राजि सोहाती॥ २६॥
सृङ्गन के मधि लटकि उपरने से घन छावैँ।
भानु-किरन परि मनहुँ प्रीति सोँ ताहि जगावैँ॥ २७॥
जो उन्मिषित धातुरूपी धारे बहु नयनहिँ।
अरु प्रपात-धारन-रव मनहुँ करत अध्ययनहिँ॥ २८॥
नाना झरनन के स्वन मनहुँ रह्यो गिरि गाई।
उच्च देवदारुन सोँ ऊरधबाहु लखाई॥ २९॥
जो प्रपात के घोसन सोँ मनु सोर मचावत।
कम्पित सारद-बिटपन सोँ मनु निजहिँ कँपावत॥ ३०॥
भस्यो पवन सछिद्र बाँसन बाँसुरी बजावत।
फुफकारैँ बिषधर अहि निज उसाँस दरसावत॥ ३१॥
कुहिरा भरे अन्ध कन्दर मनु ध्यानहिँ धारत।
मेघ सरिस निज पाहन-खन्डन चलन बिचारत॥ ३२॥
नभ पहुँचत निज सिखरन सोँ मनु लेत जँभाई।
भस्यो अनेक सानु बहु कन्दर-सोभा छाई॥ ३३॥
साल ताल कर्नन अरु बहु बाँसन सो जो वृत।
कुसुमित लता-बितानन सोँ ह्वै रह्यो अलङ्कृत॥ ३४॥
नाना मृग-गन भस्यो धातु झरनन सोँ सोभित।

बहु झरनन सों लसत सिला-खन्डन सों पूरित ॥ ३५ ॥
किन्नर उरग यक्ष गन्धर्व महर्षिन सेवित।
लता पादपन भरि कन्दर केहरिन अधिष्ठित ॥ ३६ ॥
व्याघ्रादिकन भरयो सुस्वादु फल मूलन सों जुत।
ऐसे परबतबर पैं चढ्यो तबै मारुत-सुत ॥ ३७ ॥
राम लखन की त्वरा और आनन्द धरे मन।
चढ्यो सुरम्य महीधर सृङ्गन पैं कपि ता छन ॥ ३८ ॥
टूटीं सिला महीधर बर की पड़पड़ाइकै।
चढ्यो जबै बानरबर अपनो तन बढ़ाइकै ॥३९ ॥
चाहत पहुँचन दच्छिन सों जलनिधि उत्तर तट।
चढ़िकै ता पर्वत पैं तब वह पवन-सुवन भट ॥ ४० ॥
लख्यो भयङ्कर सागर भरयो भीम उरगन सों।
जैसे-अम्बर सोभित होत भरयो पवनन सों ॥ ४१ ॥
कपि केहरि उड़ि चल्यो तबै दच्छिन सों उत्तर।
ता कपिबर सों दब्यो तबै वह बसुधाधर बर ॥ ४२ ॥
कम्पित सिखरन सह अरु गिरत अनेक द्रुमन सह।
अरु बहु प्रानिन सह फटि प्रविस्यो बसुधा-तल महँ ॥ ४३ ॥
मथे तासु उरु-बेग अनेकन पादप कुसुमित।
हने बज्र सों मानहुँ भए भूमि पैं निपतित ॥ ४४ ॥
महाबली कन्दर-अन्दर-बासी केहरि-गन।
पीड़ित ह्वै अति गरजे मनहुँ करत नभ छेदन ॥ ४५ ॥
त्रस्त खसे आभूषन धरे सिथिल अम्बर कों।
बिद्याधरी उड़ीं तब सहसा ता भूधर सों ॥ ४६ ॥
दीप्त-जिह्व अति दीरघ महागरलधर अति बल।
सीस दबन सों छटपटान लागे अहि ता थल ॥ ४७ ॥

किन्नर उरग यक्ष गंधर्व और बिद्याधर ।
ता पीड़ित गिरिवरहिँ छाड़ि कै पहुँचे अम्बर ॥ ४८ ॥

दोहा

सोभा-जुत गिरि कौसिवर सों दबिकै ता काल ।
बिटपन अरु सिखरन सहित प्रविसि गयो पाताल ॥ ४९ ॥
ऊँचो जोजन तीस जा दस जोजन बिस्तार ।
भयो बराबर धरनि के ता थल तबहिँ पहार ॥ ५० ॥
परसत तट कल्लोल-जल खारो पारावार ।
लाँघन चाहत उड़्यो नभ पहुँच्यो चाहत पार ॥ ५१ ॥

इति षट्पंचाशः सर्गः

सप्तपंचाश सर्ग ।

रोला ।

महाबेग नभ उड़्यो पच्छधर जैसे भूधर ।
अहि गन्धर्व यक्ष जामेँ फूले उत्पलबर ॥ १ ॥
रम्य कुमुद ससि लसत अर्क कारन्डव जामेँ ।
पुष्य स्रवन जलहंस जलद सिवार सम जामेँ ॥ २ ॥
मीन पुनर्बसु महाग्राह लोहित तन मङ्गल ।
महादीप ऐरावत स्वाति हंस-बिहरन कल ॥ ३ ॥
पवन-समूह तरङ्ग सीत जल किरन निसाकर ।
अथकित हनूमान इमि पार करत नभ सागर ॥ ॥ ४ ॥
ग्रसत जात आकासहिँ परसत मानहुँ चन्द्रहिँ ।
तारन और भानु सह लूटत मनहुँ अम्बरहिँ ॥ ५ ॥
बिनु थाके अपार नभ जलनिधि अवगाहत इमि ।
चल्यो जात हनुमान जलद-जालहिँ खेँचत जिमि ॥ ६ ॥

दोहा।

सेत बरन मंजीठ रँग किते नील अरु लाल।
और हरित बहु घन कियो अति प्रकास ता काल ॥ ७ ॥
मेघन प्रविसत अरु कढ़त इमि हनुमत दरसात।
जथा निसाकर ह्वै प्रकट पुनि घन में छिपि जात ॥ ८ ॥

रोला।

घिर कै जलधर-पटल माहिं धारे धवलाम्बर।
प्रकटत दुरत लस्यो नभ के मधि जैसे हिमकर ॥ ९ ॥
नभ में जात गरुड़ सम राज्यो मारुत-नन्दन।
पुनि पुनि निकरत अरु टारत अनेक घन-बृन्दन ॥ १० ॥
करत नाद अति मेघ सरिस प्रकटाइ घोर स्वन।
नाम सुनाइ अपानो हनिकै बर निसाचरन ॥ ११ ॥
करि नगरी कों आकुल पीड़ित करिकै रावन।
अर्दि महाबीरन करिकै सिय को अभिवादन ॥ १२ ॥
महा तेजधर जात मध्य ऊपर सागर सों।
परसन करिकै पुनि मैनाक महीधर-बर कों ॥ १३ ॥
पहुँच्यो आइ बान जिमि छूटि सरासन डोरी।
आइ निकट पुनि निरखि महीधर-बरहिं बहोरी ॥ १४ ॥
महामेघ सम कपिबर नाद कियो अति ता छन।
पूरि दियो निज गर्जन को दसहू दिसि में स्वन ॥ १५ ॥
महानाद करिकै गरजत जिमि महा अम्बुधर।
पहुँचि गयो सुहृदन निरखन लालस सों कपिबर ॥ १६ ॥
करत नाद अति घोर और निज पुच्छ कँपावत।
बैनतेय-सेविति पथ में इमि रोर मचावत ॥ १७ ॥
कपि के नाद फटत अम्बर मनु सह रबि-मन्डल।
सागर के उत्तर तट पै जे बीर महाबल ॥ १८ ॥

बैठे बीर पहिलेही सों कपिबरहिं लखन कों।
मिल्यो वायु सों महामेघ के सम अति स्वन कों॥ १९॥

बरवै।

हनुमत के उरु बेगहिं तब ते बीर।
कियो स्रवन सबही ने जलनिधि-तीर॥ २०॥

रोला।

स्रवन कियो तिन बनचारिन ने भए दीन मन।
बारिद-गरजन सम कपिबर के गरजन को स्वन॥ २१॥
तब कपि-जूथप जाम्बवान ह्वै प्रीति-मुदित मन।
सब बानर-गन कों बोलाइ कीनो इमि भाषन॥ २२॥
"निस्चिय किय हनुमान सर्वथा काजहिं साधन।
नहिं करतो तो होतो ऐसो याको नाद न"॥ २३॥
महानुभाव कीस को सुनि उरु-बेगरु गरजन।
ह्वैके मुदित लगे इत उत निरखन ते कपि-गन॥ २४॥
ते सब गिरि सों गिरि पैं अरु सिखरन सों सिखरन।
चढ़न लगे करिबे हित कपिबर को अवलोकन॥ २५।
होइ मुदित ते बिटपन की साखन पैं ह्वै थित।
लगे घुमावन बहु उज्जल बसनन कों तब तित॥ २६॥
जिमि गिरि-कन्दर में भरिकै गरजत है मारुत।
तैसेइ गरज्यो बलधारी हनुमत मारुत-सुत॥ २७॥
लखिकै महामेघ सम आवत पुनि कपिबर कों।
होत भए ठाढ़े ते सब कपि जोरे कर कों॥ २८॥
अपर महीधर सम बलवान बेगधर कपिबर।
उतरि पर्‌यो ता गिरि के बिटपन भरे सिखर पर॥ २९॥
भर्‌यो मोद सों हरष पूर्न-पूरित बहु निर्भर।

गिरि पैं आइ पस्यो जिमि पच्छ-बिहीन महीधर ॥ ३० ॥
तब ते कपिबर मुदित होइ हनुमानहिं घेरे।
बैठि गए एकत्रित होइ पवन-सुत नेरे ॥ ३१ ॥
घेरि तबै ते कपि-गन परम मोद सों छाए।
होइ मुदित अति मारुत-सुत के ढिग चलि आए ॥ ३२ ॥
लैके पुरस्कार तब ते अनेक फल फूलन।
करिबे लगे पवन-सुत को कपि-जूथप पूजन ॥ ३३ ॥
गरजे कोऊ मुदित किलकिला सब्दहिं करिकै।
झूमन लगे कोऊ कपि तरु-साखन कों धरिकै ॥ ३४ ॥
हनूमान गुरु जाम्बवान आदिक सब वृद्धन।
अरु कुमार अङ्गद कों आइ कियो अभिवादन ॥ ३५ ॥
तिन कपि-गन सों पूजित ह्वै अरु पाइ बड़ाई।
संछेपहि सों कह्यो "जानकी मोहिं लखाई" ॥ ३६ ॥
बैठ्यो तब कपि बालि-सुवन कों भैंटि भुजन तैं।
ता महेन्द्रगिरि के अतिसय सुरम्य कानन में ॥ ३७ ॥
कहन लग्यो पूछन पैं हनूमान इमि बानी।
"थित असोक बनिका में लख्यो सीय महरानी ॥ ३८ ॥
घोर निसिचरिन सों वह निन्दा-रहित सुरच्छित।
एक बेनि धरि करत लालसा राम-दरस हित ॥ ३९ ॥
मलिना जटिला कृसा खिन्न पुनि उपवासन सों"
इमि निरख्यो सुनि ऐसे अमृत तुल्य बचन कों ॥ ४० ॥
भए मुदित ता थल पैं ते सबही बानर-गन।
लगे महाबल नाद करन अरु कोऊ गर्जन ॥ ४१ ॥
कोउ किलकिला सब्द करि गरजत गरजन कों सुनि।
कोउ कपि-कुंजर मुदित उठावन लगे पुच्छ पुनि ॥ ४२ ॥

कोउ निज दीरघ थूल पुच्छ कों लगे कँपावन ।
और कोऊ श्रीमान हनूमानहिं मुदछावन ॥ ४३ ॥
हरषित ह्वै गिरि के ऊपर मिलि लागे भेटन ।
तब मारुत-सुत सों अङ्गद कीनो उच्चारन ॥ ४४ ॥
सब कपि बीरन मध्य माहिं इमि कह्यो बचन बर ।
"बीरज वा बलमाहिं न तुव सम कोऊ बानर ॥ ४५ ॥
बिस्तीरन जलनिधि कों लाँघि बहुरि तू आयो ।
हम सब को जीवन-दाता तूही दरसायो ॥ ४६ ॥
राम पास जैहैं सिद्धार्थ प्रसादहि तेरा ।
धन्य स्वामि-भक्ती धीरज अरु धन बल तेरा ॥ ४७ ॥
लह्यो दैवही सों तूने सीता को दर्सन ।
त्यगिहैं राम दैव सों सीय-बियोगज दुख घन" ॥ ४८ ॥
तब अङ्गद हनुमान जामवन्तहिं कपि घेरे ।
होत भए थित दीर्घ सिलन लहि मोद बड़ेरे ॥ ४९ ॥
ता गिरि के महती सिलान पैं करि आरोहन ।
सुनन चहत मारुत-सुत सों सागर को लङ्घन ॥ ५० ॥
लखिबो सीता को लङ्का को अरु रावन को ।
कर जोरे सुनिबे हित हनुमत के आनन सों ॥ ५१ ॥
बैठ्यो श्रीजुत अङ्गद बहु बानर-गन सों वृत ।
जिमि दिवि में सुरपति सुर-गन सों होइ उपासित ॥ ५२ ॥

दोहा

अङ्गद अङ्गदबाहु अरु कीर्तिमान हनुमान ।
बैठे उन्नत गिरि भयो श्रिय सों ज्वलित महान ॥ ५३ ॥

इति सप्तपंचाशः सर्गः ।

अष्टपंचाश सर्ग

रोला ।

थित महेन्द्र गिरि-सिखर तबै ते सब अति बलधर ।
भए प्रसन्न परम हनुमत आदिक बानरबर ॥ १ ॥
महानुभाव कपिन कों बैठ्यो लखि प्रसन्न चित ।
जाम्बवान ह्वै परम मुदित अपने जिय में तित ॥ २ ॥
पूछ्यो कारज कर्ता मुदित पवन-सुत सों तब ।
" लख्यो देवि कैसे तुमने किमि रहत तहाँ अब ॥ ३ ॥
तासों किमि आचरत क्रूरकर्मा दस आनन ।
करौ तत्व सों कपिबर यह सब मोसों भाषन ॥ ४ ॥
कैसे खोज्यो देवी कों का वह बोली पुनि ।
सुनिकै हालहिं करिहैं कारज निसिचय जिय गुनि ॥ ५ ॥
का वृत्तान्त राम सों हम सब जाइ सुनावैं ।
कहौ अबै तुम तिनसों पुनि का हाल छिपावैं " ॥ ६ ॥
इमि पूछ्यो कपिबर ह्वै मुदित और रोमांचित ।
भाषन लाग्यो सिर नवाइ करि सियहिं नमस्कृत ॥ ७ ॥
"उड्यो सामनेहिं तुम्हरे मैं महेन्द्र गिरिबर ते ।
चाहत पहुँचन दच्छिन तटपैं रत्नाकर के ॥ ८ ॥
जात मोहिं पथ मैं इक घोर बिघ्न दरसायो ।
दिव्य मनोहर सुबरन-मय इक सिखर लखायो ॥ ९ ॥
रोकि पथहिं थित मैंने ताहि बिघ्न अनुमान्यो ।
पुनि ता उत्तम सुबरन गिरिबर ढिग पहुँचान्यो ॥ १० ॥
याकों तोड़न चहिए यह मैं हृदय बिचार्‌यो ।

'निज लाङ्गूल घुमाइ महीधर बर पैं मास्यो ॥ ११ ॥
रवि सम ताको शृङ्ग सहसधा चूर भयो तहँ ।
बोल्यो वह गिरिबर लखिकै मेरी करनी कहँ ॥ १२ ॥
करत प्रसन्न मनहिं बोल्यो यह मधुरे बैनहिं ।
मैं तुम्हरो पितृव्य पुत्र जानो पितु-मित्रहिं ॥ १३ ॥
बसत महोदधि मैं मैनाक नाम है पुनि मम ।
रहे पच्छधर पूरब माहिं महीधर-उत्तम ॥ १४ ॥
सब को बाधा देत रहे घूमत सब बसुधहिं ।
सुनिकै सुर-नायक इमि तिन सब के आचरनहिं ॥ १५ ॥
सहस खन्ड करि सुरपति तिनके पच्छ नसायो ।
तुम्हरे पितु ने मोको तिनसों तबहि बचायो ॥ १६ ॥
फेंक्यो बत्स पवन ने जलनिधि मैं इत मोको ।
करनो चहिए अरिअरदन राघव हित मोको ॥ १७ ॥
धनुधारिन मैं बर रघुबर महेन्द्र सम बलधर ।
सुनि मैंने मैनाक महीधर को भाषन बर ॥ १८ ॥
त्वरा बिबस मम मन ताको सब हाल सुनायो ।
पुनि मैनाक महीधर-बर की अनुमति पायो ॥ १९ ॥
रवि सम रूप धरे पुनि वह गिरि माहिं समायो ।
तब गिरि जलनिधि के अन्तर प्रविसत दरसायो ॥ २० ॥
धारि बेग अति सेस पंथ मैं तब धायो मैं ।
बहुत काल लों जब सों नभ-पथ माहिं चल्यो मैं ॥ २१ ॥
नागन की माता सुरसा तब मोहिं लखाई ।
बोली सागर मधि देवी इमि बचन सुनाई ॥ २२ ॥
मम भोजन हित कपिबर सुर-गन तोहिं पठायो ।
तोहिं भच्छन करिहों सुर-गन प्रेस्यो तू आयो ॥ २३ ॥

इमि सुनिकै सुरसा बचनहिं मैं प्रनत होइ थित।
होइ बिवर्न बदन तासोँ भाष्यो बचनहिं तित ॥ २४ ॥
दसरथ-सुत श्रीमान राम प्रविसे दन्डक बन।
सहित पत्नि सीता के श्रोर परमतप लछिमन ॥ २५ ॥
हस्यो तासु पत्नी सीतहिं दुष्टात्मा रावन।
जात दूत मैं तासु पास लहि रघुबर-सासन ॥ २६ ॥
करनो चहिय सहाय बसत राघव के राजहिं।
अथवा लखि सिय अरु अचरजकर्मा रघुराजहिं ॥ २७ ॥
पैठूँगो तुव मुख है सत्य बचन मेरो यह।
सुनि मम बानी कामरूपिनी तब सुरसा वह ॥ २८ ॥
मोसोँ बचत न कोउ मोहिं बर यह बचन सुनायो।
इमि सुनि मैंने दस जोजन निज बदन बढ़ायो ॥ २९ ॥
एकहि छन मैं बहुरि पंचगुन मैं तहँ बाढ्यो।
मम प्रमान सोँ अधिक आननहिं ताने फाड्यो ॥ ३० ॥
मैं लघुरूप भयो लखि ताको बिस्तृत आनन।
होइ गयो मैं इक अङ्गुष्ठ मात्र को ता छन ॥ ३१ ॥
पैठि आसु ता मुख मैं छन मैं आयो बाहर।
तब धरि सुरसा देवि रूप निज कह्यो बचन बर ॥ ३२ ॥
अर्थ-सिद्धि हित कपिबर तुम अब सुख सोँ जाओ।
महानुभाव राम लैजाइ जानकिहिं लाओ ॥ ३३ ॥
होहु सुखी दीरघभुज मैं प्रसन्न कपि कुंजर।
कियो प्रसंसा साधु साधु कहि सबन तहाँ पर ॥ ३४ ॥
तब मैं उड्यो बिपुल नभ माहिँ जथा खगराई।
पकस्यो कोउ ने मम छाया पै नहिं दरसाई ॥ ३५ ॥
देखि पस्यो कोउ नहिं जो रह्यो रोकि गति मेरी।

बेग-रहित हूं मैं दसदिसि निज नैनन हेरी ॥ ३६ ॥
भयो बिघ्न मम जात बुद्धि यह मो मन आई।
पै नहिं याको रूप परत है कहूं लखाई ॥ ३७ ॥
इमि सोंचत मम दृष्टि परी सागर के ऊपर।
देख्यो जल के मध्य एक निसिचरी भयङ्कर ॥ ३८ ॥
घोर रूपिनी ताने हँसि कीनो अति गरजन।
भय-बिहीन पुनि क्रूर बचन कीनो उच्चारन ॥ ३९ ॥
मिल्यो क्षुधित मोकों अतिकाय चहत कहँ जायो।
कब प्रसन्न मम देह भच्छ बहु काल न खायो ॥ ४० ॥

दोहा।

बहुत उचित कहि कीन मैं ता बच अङ्गीकार।
ता मुख सों कीनो अधिक निज तन को बिस्तार ॥ ४१
तब निज दीरघ बदन करि सङ्कोचित छन माहिं।
ताको हृदय उपारिकै नभ मैं उड्यो तहाहिं ॥ ४२ ॥
मम भच्छन के हेतु ता आनन बढ़तहि जाइ।
पै न लख्यो ताने कियो मैंने जो चतुराइ ॥ ४३ ॥
हिय फटिबे सों वह तबै दोऊ हाथ फैलाइ।
गिरि सी लवनोदधि गिरी अपनो प्रान गँवाइ ॥ ४४ ॥

रोला।

पुनि नभचारिन की मोकों यह बात सुनाई।
हनुमत सों आसुहिं भीमा सिंहिका नसाई ॥ ४५ ॥
काज-बिलम्ब भयो सोंच्यो नभ मैं हनि ताकों।
जाइ महापथ निरख्यो नभ-मन्डित लङ्का कों ॥ ४६ ॥
पहुँचि गयो तब मैं सागर के दच्छिन तटपर।
लख्यो निसाचर नगरिहिं अस्त भए पैं दिनकर ॥ ४७ ॥

प्रविस्यो भीम निसाचर-गन जाने बिनु द्वारे।
मम प्रविसत कल्पान्त मेघ सम बपु बिस्तारे ॥ ४८ ॥
अट्टहास करती आगे आई इक नारी।
ज्वलित अनल से केस धरे मोहिं हनन बिचारी ॥ ४९ ॥
भई भयङ्करि जित मम बाम मुष्टिका सों जब।
प्रविसत सन्ध्या मैं डरि मोसों कह्यो बचन तब ॥ ५० ॥
मैं लङ्का नगरी तुव बिक्रम सों कपि हारी।
तासों तूं अब ह्वैहै सब निसिचर संहारी ॥ ५१ ॥
तहां लखन हित सिय कों कीन सबहिं निसि बिचरन।
गयो दसानन-अन्तःपुर न कियो अवलोकन ॥ ५२ ॥
दसकन्धर के सदन माहिं खोजत तब सीतहिं।
पस्यो सोक-सागर मैं पारहिं पायो पै नहिं ॥ ५३ ॥
सोचत मैंने लख्यो हेम-प्राकारन-मन्डित।
उत्तम गृहाराम इक निसिचर नायक को तित ॥ ५४ ॥
लख्यो डांकि प्राकार अनेकन पादप तामैं।
और बड़ो इक सिंसु बिटप असोक बनिका मैं ॥ ५५ ॥
निरख्यो कदली-बन तापैं करिकै आरोहन।
तासु समीपहिं सीताहू को कीनो निरखन ॥ ५६ ॥
स्यामा कमलनयनि उपवासन सों कृस आनन।
धूल-धूसरित केस बसन इक कीने धारन ॥ ५७ ॥
सोक ताप सों दीन भई स्वामी-हित मैं थित।
क्रूरा और भयङ्करि निसिचरीन सों ह्वै वृत ॥ ५८ ॥
सोनित आमिष-भच्छिनि बाघिनि सों हरिनी जिमि।
लख्यो सियहिं निसिचरिन मध्य पुनि पुनि तर्जित तिमि ॥ ५९ ॥
धरे एक बेनिहिं पति के चिन्तन मैं तत्पर।

हिम-बिबरन-कमलिनि-बदनी सोवत धरनी पर ॥ ६० ॥
लख्यो कोऊ बिधि सोँ मैंने ता मृगनयनिहिँ तित ।
रावन बात न मानत निश्चिय किए मरन हित ॥ ६१ ॥
लखि जसस्विनी ऐसी रघुबर की ता नारी ।
ठहस्यो सिंसु बिटप पैं पुनि निरखन जिय धारी ॥ ६२ ॥
पुनि करधनी नूपुरन के हलहला रवन कोँ ।
सुन्यो अधिक गम्भीर कढ़त दससीस-सदन सोँ ॥ ६३ ॥
तब मैं अति उद्विग्न होइ करि सङ्कोचित तन ।
पच्छी सम छिपि गयो सिंसु तरु मैं जो अति घन ॥ ६४ ॥
तब निज दारन सङ्ग लिए दससीस महाबल ।
आवत भयो रही बैठी बैदेही जा थल ॥ ६५ ॥
लखि निसिचर-पति कोँ सुन्दरि बिदेह नृपजाई ।
करि सङ्कोचित अङ्ग भुजन सोँ कुचन छिपाई ॥ ६६ ॥
भई त्रस्त उद्विग्न परम डरि निरखत उत इत ।
लखति नाहिँ निज त्रानहिँ भई तपस्विनि कम्पित ॥ ६७ ॥
ऐसी परम दुःखिता सिय सोँ तब दसकन्धर ।
माथ नवाइ कह्यो तुम देहु मोहिँ बहु आदर ॥ ६८ ॥
जो न मोहिँ तू करिहै दर्प-बिबस आनन्दित ।
तो द्वै मास गए मैं पीहोँ तेरो सोनित ॥ ६९ ॥
दुष्ट दसानन के इमि बैनहिँ सीय स्रवन करि ।
बोली उत्तम बचनहिँ मन मैं अतिहि कोप भरि ॥ ७० ॥
निसिचर-अधम नारिहूँ मैं राघव समरथ की ।
औार पुत्र-बधु इक्ष्वाकू-कुल-पति दसरथ की ॥ ७१ ॥
क्योँ न गिरति है जीह कुबाच्य कहत मोकोँ अति ।
कहु तुव दुष्ट सूरता जो मैं बिछुरी निज पति ॥ ७२ ॥

ताकों हरि लायो यह सब जान्यो नहिं रघुबर।
दास जोग तू तिनके नहिं किमि होइ बराबर ॥ ७३ ॥
सूर सत्यबक्ता अजेय रघुबर चाहत रन।
इमि सुनि सीता के कठोर बैनन दस आनन ॥ ७४ ॥
जर्‍यो कोप के बस जिमि दहकत अनल चिता की।
दहिनी मुष्टि उआइ क्रूर नैनन सों ताकी ॥ ७५ ॥
मारन चल्यो सियहिं हाहा सब नारि पुकारी।
तिन नारिन सों कढ़ि पटरानी ताकी नारी ॥ ७६ ॥
करन लगी मन्दोदरि सुन्दरि ताकों वारन।
मदन-बिद्ध तासों पुनि लागी बचन उचारन ॥ ७७ ॥
कहा काम सिय सों तुमकों महेन्द्र सम बिक्रम।
मो सह रमन करौ न जानकी मोसों उत्तम ॥ ७८॥
कह करिहौ सीता सों देव-यक्ष-कन्यन सों।
और गन्धरब-कन्यन सों प्रभु करौ रमन कों ॥ ७९ ॥
तब तिन नारी-गन सों समुझायो वह बलधर।
उठिकै तहँ सों आयो अपने गृह दसकन्धर ॥ ८० ॥
चले जान पैं रावन के पुनि क्रूर निसाचरि।
लागीं डाँटन सियहिं क्रूर बच उच्चारन करि ॥ ८१ ॥
तृन सम गिन्यो जानकी निसिचरीन के बचनहिं।
तिन सब की गर्जन सुनि सीता नेकु डगी नहिं ॥ ८२ ॥
लखि निज गर्जन बृथा आमिषहिं भच्छन वारी।
रावन सों बोलीं सीता अति दृढ़ता धारी ॥ ८३ ॥
ह्वै निरास अरु निरउद्यम ता थल पैं ते सब।
थकित होइकै निद्रा के बस होइ गईं तब ॥ ८४ ॥
तिनके सोवन पैं सीता निज पति-हित पागी।

परम दुखित सोंचति करुना करि रोवन लागी ॥ ८५ ॥
तिन मधि तें उठि कै बोली त्रिजटा इमि बानी ।
खाओ निजहिं खाइहौ क्यों सुन्दरि सिय रानी ॥ ८६ ॥
दसरथ-पुत्रबधू रघुबर की पत्नी जो है ।
आज लोम-हरषन दारुन सपनो निरख्यो है ॥ ८७ ॥
याके पति को जय निसिचर-बिनास को कारन ।
यह हम लोगन कों राघव सों सकति बचावन ॥ ८८ ॥
करें प्रार्थना सीता की यह मोहिं सोहाई ।
जो ऐसो सपनो दुःखनी हेतु दरसाई ॥ ८९ ॥
वह अनेक दुःखन सों छूटि लहत सुख भारी ।
प्रार्थनाहिं सों होति प्रसन्न बिदेह-कुमारी ॥ ९० ॥
निसिचरीन कों अति भय सों यह सकति बचाई ।
तबै लजीली सुन्दरि सुनि पति-जय हरषाई ॥ ९१ ॥
बोली जो यह साँच देउँगी तुम्हें सरन मैं ।
तब सिय की या दुर्गति कों करि अवलोन मैं ॥ ९२ ॥
थकि सोंचन लाग्यो चिन्ता न दुरी मम मन सों ।
लग्यो बिचारन का उपाय सिय सों बोलन को ॥ ९३ ॥
इच्वाकू-कुल के जस कों मैं लाग्यो बरनन ।
तिन राजर्षिन गुन-पूरित सुनिकै मम बचनन ॥ ९४ ॥
बोली मोसों देवि आँसु भरिकै निज नैनन ।
को तू कपि किमि आयो का आवन को कारन ॥ ९५ ॥
कैसे भई प्रीति राघव सों मोसों खोलो ।
सुनि ताके ऐसे बचनहिं तब मैंहूँ बोलो ॥ ९६ ॥
देवी तुव पति राघव को सहाय अति बलधर ।
है सुग्रीव नाम इक परम भीम बानर बर ॥ ९७ ॥

आनो ताको अनुचर हनूमान मोहिं आयो ।
अचरजकर्मा तुम्हरे पति ने मोहिं पठायो ॥ ९८ ॥
वह श्री सों जुत नर-केहरि दसरथ-नन्दन नें ।
दीन चिन्हानी मुँदरी जिमि पतियाओ मन मैं ॥ ९९ ॥
देवि चहत जानन सो तुमसों कहा करूँ मैं ।
राम लखन सों तुव उत्तर पुनि कहा कहूँ मैं ॥ १०० ॥
यह सुनि और जानि कै बोली जनक-कुमारी ।
मोहिं लैजाहिं राम जर सों रावनहिं उखारी ॥ १०१ ॥
तब नवाइकै सीस अनिन्दित सिय महरानिहिं ।
माग्यो मैंने राघव-मन-मुद-देनि चिन्हानिहिं ॥ १०२ ॥
तब बोली मोसों सीता तू लै यह मनिबर ।
एहि लहि करिहैं माहाबाहु पति तुव अति आदर ॥ १०३ ॥
दियो सुन्दरी मोहिं मनिबर इमि करि उच्चारन ।
बहुरि कह्यो सोइ सन्देसहिं उद्विग्न परम मन ॥ १०४ ॥
तब ता राजकुमारी कों मैंने प्रनाम करि ।
कियो प्रदच्छिन इत आवन अपने मन मैं धरि ॥ १०५ ॥
पुनि उत्तर बचनहिं बोली सिय निसचित मन सों ।
हनूमान मम हालहिं भाषो रघुनन्दन सों ॥ १०६ ॥
राम लखन दोउ सुनिकै तुव मुख सों सब जैसे ।
सह सुग्रीव आसु आवैं तुम करियो तैसे ॥ १०७ ॥
जो यह नहिं ह्वैहै द्वै मास जीवनहिं धरिहौं ।
नहिं लखिहैं मोहि रघुनन्दन अनाथ सम मरिहौं ॥ १०८ ॥
सुनिकै सकरुन बैन कोप मोकों तब आयो ।
सेस बचे कारज को ध्यान हिये निज लायो ॥ १०९ ॥
तब भूधर के सम बाढ़न लाग्यो मेरो तन ।

चहत जुद्ध लाग्यो रावन को बिपिन बिनासन ॥ ११० ॥
भ्रान्त-पच्छि मृग जुत बन कोँ करि तब अवलोकन ।
जागि नींद सोँ लागीँ लखन बिकृत निसिचरि-गन ॥ १११ ॥
लखिकै मोकोँ ता कानन मैँ मिलिकै ते सब ।
कियो निवेदन दसकन्धर सोँ तुरत जाइ तब ॥ ११२ ॥
एक दुष्ट कपि ने नृप दुर्गम बनहिँ नसायो ।
महाबली तुम्हरो बल ताकोँ नाहिँ जनायो ॥ ११३ ॥
तुव अप्रियकारी की यह कुबुद्धि दरसावै ।
देहु बधाज्ञा जामैँ पुनि जीवित नहिँ जावै ॥ ११४ ॥
इमि सुनि रावन ने भेज्यो दुर्नय बहु किङ्कर ।
रहे निसाचर जे निसिचर-नायक-मन-अनुचर ॥ ११५ ॥
ते अस्सी सहस्त्र रजनीचर सूलहिँ धारे ।
ता कानन मैँ तबै परिघ सोँ मैंने मारे ॥ ११६ ॥
तिनमैँ तेँ कछु सेस बचे ते लघुबल वारे ।
कह्यो जाइ दससिर सोँ मैँ किङ्कर संहारे ॥ ११७ ॥
बहुरि चैत्य प्रासादहिँ नासन मम मन आयो ।
सत निसिचरन तासु खम्भन सोँ बहुरि नसायो ॥ ११८ ॥
रिसि बस लङ्का माहिँ ललाम नष्ट तेहि कीनो ।
तब प्रहस्त-सुत जम्बुमालि कोँ आज्ञा दीनो ॥ ११९ ॥
लीने घोर भयङ्कर निज सेना महान कोँ ।
मैंने ता रन-कोविद बलधर जातुधान कोँ ॥ १२० ॥
घोर परिघ सोँ ठोँकि निसिचरन के सह मार्‍यो ।
इमि सुनि रावन-मन्त्री-सुतन निदेस प्रचार्‍यो ॥ १२१ ॥
सहित पदाति-सेन के रावन तिनहिँ पठायो ।
परिघ मारि तिनकोँ जम-गृह मैँहू पहुँचायो ॥ १२२ ॥

मरे समर मैं मन्त्री-पुत्रन कों रावन सुनि।
पठयो लघुबलधारी पंच सेन-अग्रग पुनि ॥ १२३ ॥
तिन्हहिं सेन सह तब मैंने दीनो संहारी।
बहुरि महाबल अच्छकुमारहिं दससिरधारी ॥ १२४ ॥
भेज्यो बहु निसिचर-गन के समेत सङ्गर हित।
ता मन्दोदरि के कुमार कों जो रन-पन्डित ॥ १२५ ॥
सहसा उड़त अकास तासु पैरन धरि लीनो।
सत बारन घुमाइ कै ताहि पटकि दरि दीनो ॥ १२६ ॥
सुनिकै रावन अच्छकुमारहिं रन संहार्‌यो।
दियो निदेस दुतिय निज सुत कों जो बल भार्‌यो ॥ १२७ ॥
परम क्रुद्ध अतिसय बलधारी दुर्मद अति रन।
ता निसिचर-पुङ्गवहू कों मैंने सह जोधन ॥ १२८ ॥
नष्ट पराक्रम करि कै रन मैं अति हरषायो।
करिकै अति बिस्वास जाहि दस-बदन पठायो ॥ १२९ ॥
मद-उद्धत बीरन सह जौन समर मैं आयो।
ताने मोहिं दुस्सह लखि अरु निज बल बिनसायो ॥ १३० ॥
ब्रह्मदेव को अस्त्र चलाइ कियो मम बन्धन।
तब ते बाँधन लगे बेगधर मोहिं निसिचर-गन ॥ १३१ ॥
रावन के समीप पुनि सब लाए मोकों धरि।
कीनो भाषन ता दुरातमहिं अवलोकन करि ॥ १३२ ॥
पूछ्यो निसिचर-मारन लङ्का-आवन-कारन।
मैंने कह्यो भयो यह सब सीता के कारन ॥ १३३ ॥
ताही को दरसन चाहत आयो प्रभु तुव घर।
मारुत को औरस सुत हनूमान मैं बानर ॥ १३४ ॥
मैं सुग्रीव-सचिव जानौ मोहिं दूत राम को।

राम-दूत पन हित मैं आयो तुव सुधाम को ॥ १३५ ॥
सुनो सँदेसो जौन करत तुम्हरे ढिग बरनन।
कह्यो उचित जो कपि-नायक ने तुमसों बैनन ॥ १३६ ॥
महाभाग सुग्रीव कह्यो है कुसल कहन को।
कह्यो धर्म कामार्थ सहित पुनि पथ्य बचन को ॥ १३७ ॥
बसत रह्यो जो ऋष्यमूक जो भर्‍यो द्रुमन सों।
भई मित्रता मम तह जोधा रघुनन्दन सों ॥ १३८ ॥
तिनने कह्यो निसाचर मम नारी हरि लीनी।
तुम्हहिं सहाय करन की चहिय प्रतिज्ञा कीनी ॥ १३९ ॥
बाली सों राज-च्युत तब सुकन्ठ कपि-नायक।
राम लखन सों कियो मिताई साच्छी पावक ॥ १४० ॥
तिनने एक बान सों रन मैं बाली को हति।
कीनो महाराज बानर-गन को बानर-पति ॥ १४१ ॥
करनो चहिए तिन सहायता सब बिध साधित।
तासों भेज्यो है मोको धर्महिं बिचारि इत ॥ १४२ ॥
आसु सियहिं लै आइ करौ राघव के अर्पन।
जबलों करैं न नास सेन तुमरी बानर-गन ॥ १४३ ॥
इन बानर-गन को प्रभाव है काको अविदित।
देवनहू के पास जाहिं जे होइ निमन्त्रित ॥ १४४ ॥
इमि कपि-पति भाष्यो जो मैंने तुम्हहिं सुनायो।
तब मोहिं लखन लग्यो मनु नैनन चहत जरायो ॥ १४५ ॥
मम प्रभाव के जाने बिनु वह दुष्ट दसानन।
रौद्र कर्मकर दियो निदेस हरौ या प्रानन ॥ १४६ ॥
तबै महामति ता लघुभ्राता नाम बिभीषन।
कीनो मेरे हित यह निसिचर-पति सों जाचन ॥ १४७ ॥

उचित न निसिचर-केहरि यह मति कीजिय त्यागन।
राज्य-सास्त्र में कथित पथहिं तुम करत उलंघन ॥ १४८ ॥
कबहुँ न देख्यो राज-नीति में दूतहिं मारन।
जो यासों है भाष्यो सोई करत उच्चारन ॥ १४९ ॥
अहो अतुल बल महापराधहु में दूतन को।
लिख्यो नीति में अङ्ग भङ्ग नहिं लिख्यो बधन को ॥ १५० ॥
सुनत बिभीषन-बैन कह्यो निसिचारिन रावन।
अहै उचित यह करो आज या पुच्छहिं दाहन ॥ १५१ ॥
लगे लपेटन मम पुच्छहिं इमि तासु बचन सुनि।
सन के बल्कल अरु कपास के बहु बसनन पुनि ॥ १५२ ॥
तब ते निसिचर परम चन्ड बिक्रम सों पागे।
अनल लगाइ पुच्छ मूकन सों मारन लागे ॥ १५३ ॥
बहु पासन सों बँधि पीड़ित ह्वै निसिचर-गन सों।
लखन चहत दिन में नगरिहिं न कष्ट मम मन कों ॥ १५४ ॥
पावक घिस्यो मोहिं ते हिये सूरता धारत।
नगर-द्वार पैं लै आए तब सबै पुकारत ॥ १५५ ॥
तब मैं निज महान रूपहिं सङ्कोचि बहोरी।
होइ गयो प्रकृतिस्थ बन्ध सब तिनको तोरी ॥ १५६ ॥
मार्यो तिन निसाचरन धारि लोह के परिघहिं।
नगर-द्वार पैं कूदि गयो धारन करि बेगहिं ॥ १५७ ॥
तब गोपुर प्राकार अटा सह ता लङ्का कों।
दाह्यो निर्भय जिमि जुगान्त को अनल प्रजा कों ॥ १५८ ॥
सबहि जर्यो दरसात अवसि जानकी नसाई।
बच्यो न कोउ लङ्का को थल सब पुरी जराई ॥ १५९ ॥
दाहत लङ्का कों मैं सीतहिं अवसि जरायो।

राघव के या महाकाज कों बिफल करायो ॥ १६० ॥
सोक-जुक्त ह्वै इमि मम मन मैं चिन्ता आई।
भरी सुभाच्छर चारन-बानी मोहिं सुनाई ॥ १६१ ॥
जरी जानकी नहिं तिनने यह बैन उचास्यो।
सुनि इमि तिनके बैन बुद्धि मैं निज हिय धास्यो ॥ १६२ ॥
जरी जानकी नहिं अरु बहु कारनन निहारत।
सोँच्यो पावक लग्यो नाहिं पै मोकों दाहत ॥ १६३ ॥
है प्रसन्न मम हियो सुगन्धित पवन बहत हैं।
बहु गुन सों जुत दृष्ट निमित्त लखाइ परत हैं ॥ १६४ ॥
ऋषि-बच अरु अनुभूत निमित्तन भयो मुदित मन।
भयो बिदा सीता सों पुनि तेहि करि अवलोकन ॥ १६५ ॥
पुनि अरिष्ट गिरिबर पै तहँ करिकै आरोहन।
लौटि चल्यो उड़ि चाहत तुम लोगन को दरसन ॥ १६६ ॥
तबै बायु ससि रबि गन्धर्व सिद्ध-गन-सेवित।
नभ-पथ को करि उल्लङ्घन तुम सबन लख्यो इत ॥ १६७ ॥
लहि तुम सब को तेज प्रसाद राम आरज को।
कीनो मैंने यह सब कपि-पति के कारज को ॥ १६८ ॥
यह सब मैंने जाइ तहां पै है करि दीनो।
जो न कियो सो चहिए तुम सब कों अब कीनो" ॥ १६९ ॥

इत्यष्टपंचाशः सर्गः।

एकोनसप्ततितम सर्ग

रोला।

हनूमान मारुत-सुत यह सब करिकै बरनन॥
भाषन लाग्यो तबै बहुरि इमि उत्तर बैनन॥ १॥
"सफल राम-उद्योग जतनहूँ कपि-पति केरो॥
लखि सीता के सीलहिं तुष्ट भयो मन मेरो॥ २॥
बानरबर सीता महरानी निज सुभाव सों॥
रिसि बस जारि सकत जग रच्छत तप प्रभाव सों॥ ३॥
अहै महातप सों जुत यह निसिचर-पति रावन॥
जो गातहिं परसत ही सीता कीन न दाहन॥ ४॥
पावक-सिखा पानि-परसे न सकत करि वैसो॥
कोप बिबस ह्वै जनक-कुमारि सकत करि जैसो॥ ५॥
जाम्बवदादिक-अनुमति सों इमि काज करन सों॥
बैदेही सह लखिबो चहिए नृप-पुत्रन कों॥ ६॥
मैं एकहि छम निसिचर-गन-नगरी-नासन मैं॥
अरु बल सों निसिचर-गन सह रावन मारन मैं॥ ७॥
का पुनि अस्त्रज्ञन बलवान बिजय चाहत रन॥
सक्तिमान बानरन हेतु है लङ्कहिं जीतन॥ ८॥
मैं रावन कों सह सेना के अरु सह परिजन॥
सहित सुतन अरु भ्रातन हूँ के मारूँगो रन॥ ९॥
चलैजु ब्राह्म रौद्र अथवा अस्त्र हू पवन को॥
अथवा बारुन अस्त्र बरुन परताप-भवन को॥ १०॥
इन्द्रजीत के अस्त्रहु लखन जोग नहिं रन मैं॥

मारि निसिचरन तिन्हैं नास करिहैं इक छन में ॥ ११ ॥
बिनु तुम लोगन के अनुमति रुकतो मेरो बल ॥
महासिला की बृष्टि चलाई मेरी अविकल ॥ १२ ॥
मारि सकै देवन कों कह पुनि निसिचर-गन कों ॥
बिनु तुम्हरे अनुमति रोकत है बल मम मन कों ॥ १३ ॥
त्यागै सागर मरजादा मन्दर गिरि हालै ॥
जामवन्त कों पै अरि-सेन न रन में चालै ॥ १४ ॥
सब निसिचर-गन-पुरुषन हूँ कों एक बालि-सुत ॥
नासि सकत सङ्गर के मध्य परम बिक्रम-जुत ॥ १५ ॥
महानुभाव नील कपि के जङ्घन के बेगन ॥
मन्दर हू फटि सकत कहा रन में निसिचर-गन ॥ १६ ॥
देव असुर गन्धर्व यक्ष पच्छी उरगन में ॥
मैन्द द्विविद को प्रतिजोधा आवत न लखन में ॥ १७ ॥
ये कपिबर अस्विनी-कुमार-तनय बलधारी ॥
प्रतिजोधा रन माहिं न इनको परत निहारी ॥ १८ ॥
मैनेहीं लङ्का नगरी कों नासि जरायो ॥
सबही राज-पथन में अपुनो नाम सुनायो ॥ १९ ॥
जयति महाबल राम और लछिमन अति बलधर ॥
श्री राघव सों पालित जय सुग्रीव नृपति बर ॥ २० ॥
मैं हूँ कोसल-राज-दास मारुत सों जायो ॥
हनूमान निज नाम सबहि थल माहिं सुनायो ॥ २१ ॥
रहत दुष्ट दसमस्तक के असोक बनिका में ॥
सिंसु-बिटप-जड़ ढिग थित मग्न भई करुना में ॥ २२ ॥
निसिचरीन सों घिरी सोक सन्ताप-कृसिततन ॥
चन्दकला जिमि प्रभा-हीन आवृत भइ मेघन ॥ २३ ॥

ध्यावत नहिँ दसकन्धर बैदेही बलदर्पित ॥
पातिब्रत-रत सुन्दरि जानकि इमि है रोधित ॥ २४ ॥
सब बिधि सोँ अनुरक्त राम मैँ जनक-दुलारी ॥
होइ रही अनन्य जिमि सचि ध्यावत पविधारी ॥ २५ ॥
धूल-धूसरित अरु तन धारे एक बसन कोँ ॥
होइ रही पुनि पुनि अति तरजित निसिचरि-गन सोँ ॥२६॥
घिरी भयङ्करि निसिचरीन सोँ प्रमदा बन मैँ ॥
एक बेनि धारे करती पति-चिन्तन मन मैँ ॥ २७ ॥
हिम-हत नलिनि सरिस भू सोवत बिवरन अतिसय ॥
रावन सोँ मन खैँचे किये मरन को निसिचय ॥ २८ ॥
कोउ बिध मृग-सावक नयनिहिँ बिस्वास दिवायो ॥
तब सम्भाषन कीनो अरु सब हाल सुनायो ॥ २९ ॥
राघव अरु-सुग्रीव-सख्य सुनिकै हरषी अति ॥
दृढ़ पातिब्रत मैँ भक्ती सोँ चिन्तत निज पति ॥ ३० ॥
महानुभाव दसानन सीय जु हनत न ताकोँ ॥
ह्वै हैँ राम निमित्त मात्र मारन मैँ जाकोँ ॥ ३१ ॥
वह कृसबदनी पति-बियोग कृस होइ गई है ॥
प्रतिपदपाठी की बिद्या सम छीन भई है ॥ ३२ ॥
ग्रसित सोक सोँ इमि बड़भागिनि जनक-कुमारी ॥
जो याको प्रतिकार करौ अब तौन बिचारी" ॥ ३३ ॥

इत्येकोनषष्ठितमः सर्गः

षष्ठितम सर्ग

रोला।

इनि सुनि हनूमान के बैनन कह्यो बालि-सुत॥
"अस्विनि के ये तनय परम बलवान बेग-जुत॥ १॥
बर प्रभाव धाता के करत दर्प अति धारन॥
पितामहहु अस्विनी कुमारन मानहिँ कारन॥ २॥
सब में बली होन को पूर्व दियो बरदानहिँ॥
ता महान बर के प्रभाव मथि सेन महानहिँ॥ ३॥
इनने पीयो अहै देव-गन केरि सुधा कोँ॥
एई दोऊ क्रुद्ध सह हय गज रथ लङ्का कोँ॥ ४॥
नास सकत करि ठहरैं और सबै बानर- गन॥
मैंहीं इकलेहि ता नगरी कोँ सहित निसिचरन॥ ५॥
बल सोँ सकत नसाइ सहित बलधर रावन के॥
का पुनि सहित बीर बलधारी तुम लोगन के॥ ६॥
सक्तिमान जय चहत कृतास्त्र अहैं बानर सब॥
वायु-पुत्र बल लङ्क जरी यह सबन सुन्यों अब॥ ७॥
देख्यो देवी कोँ पै सके ताहि नहिँ लाई॥
तुमसे ख्यात बलिन यह कहन न उचित लखाई॥ ८॥
तुम लोगन सम नाहिँ पराक्रम वा लङ्घन में॥
बानर बर कोउ अहै दैत्यगन वा अमरन में॥ ९॥
सह निसिचर-गन लङ्क जीति हनिकै रावन रन॥
लै सीता कोँ अर्थ-सिद्धि करि चलैं मुदित मन॥ १०॥
हनूमान सोँ बचे जु सेस अहैं निसिचर तहँ॥

तिन में तें सिय कों ले चलें और करनो कह ॥ ११ ॥
राम लखन के मध्य जानकी कों बैठावें ॥
और सबन बानरन वृथा क्यों कष्ट दिवावें ॥ १२ ॥
हमहिं लोग चलिकै तिन निसिचर-बरन नसाई ॥
सह सुग्रीव लखन के रामहिं निरखें जाई" ॥ १३ ॥
इमि कृतसङ्कल्पहिं तब जाम्बवान हरिसत्तम ॥
कियो अर्थबिद अर्थ-जुक्त यह भाषन उत्तम ॥ १४ ॥
"नाहिं उचित यह बुद्धि बुद्धिधर जौन सुनायो ॥
दच्छिन दिसि ढूँढन की हम सब आज्ञा पायो ॥ १५ ॥
नाहिं कह्यो राघव वा कपि-पति ने लावन कों ॥
रुचे कदाचित सिय-जीतन न राम के मन कों ॥ १६ ॥
नृपकेहरि रघुनाथ आपने कुलहिं बिचारत ॥
कियो प्रतिज्ञा सीतहिं जीतन सबै निहारत ॥ १७ ॥
मुख्य कपिन के मध्य करैंगे मिथ्या कैसे ॥
व्यर्थ समहु नहिं तुष्ट रामहूँ ह्वैहैं ऐसे ॥ १८ ॥

दोहा ।

ह्वैहै बल दरसावनहु वृथा कीस बलसींव ॥
चलें निवेदन करें जहँ राम लखन सुग्रीव" ॥ १९ ॥

इतिषष्ठितमः सर्गः

एकषष्ठितम सर्ग

रोला।

अङ्गदादि भट अरु हनुमानादिक सब कपि-गन ॥
अङ्गीकार कियो तब जाम्बवान के बैनन ॥ १ ॥
प्रीति-जुक्त सब पवन-तनय कहँ आगे कीने ॥
उड़े महेन्द्र अचल सोँ ते कपिबर बल भीने ॥ २ ॥
मन्दर मेरु समान मत्त गज से मतवारे ॥
छावत मनु नभ महासरीर महाबल वारे ॥ ३ ॥
प्रानिन-पूजित महानुभाव महाबलवानहिं ॥
निज दृष्टिन जनु ढोवत बेगवान हनुमानहिं ॥ ४ ॥
कृतकारज ह्वै अर्थ-सिद्धि करि रघुनन्दन हित ॥
निज अरु पति जस करन सफलता सोँ उन्नत चित ॥ ५ ॥
प्रिय सन्देस सुनावन चहत लहत मुद रन मैं ॥
राम-काज-साधन निस्चिय कीने सब मन मैं ॥ ६ ॥
नभहिं छावते ते बानर-गन तबै उड़ाए ॥
नन्दन बन सम द्रुमन भरे कानन मैं आए ॥ ७ ॥
मधुबन नाम सुरच्छित जैान परम कपि-पति को ॥
सबही सोँ अधृष्य हरतो सबको मन अति जो ॥ ८ ॥
सदा करत दधिमुख बानर जाकी रखवारी ॥
महानुभाव कीस-पति को मामा बलधारी ॥ ९ ॥
होइ गए ते ता बन नाहिं आइ अति उत्कट ॥
कपि-पति के मन चाहे कानन मै बानर भट ॥ १० ॥
तब ते कपि-गन ता बन कोँ लखिकै मुद पागे ॥

मधुपिङ्गल तन मधु कुमार सों जाँचन लागे ॥ ११ ॥
तब कुमार तिन जामवन्त आदिक कपि-गन कों ॥
दियो निदेस मानि बातहिं मधु के भच्छन कों ॥ १२ ॥
बुद्धिमान बाली-सुत को निदेस लहिके सब ॥
मधुकर भरे द्रुमन के ढिग ते कपि आए सब ॥ १३ ॥
परम सुगन्धित मूल और फूलन कों खाई ॥
मद सों उत्कट होत भए जिय आँनद पाई ॥ १४ ॥
मधु पीवन की आज्ञा पाइ मुदित बानर-गन ॥
होइ परम आनन्दित इत उत लागे नाचन ॥ १५ ॥

हरिगीतिका।

करते प्रनामहिं हँसत कोउ नाचत कोऊ गावन लगे ॥
उछरत प्रलापहिं करत कोउ कोउ पढ़त कोउ धावन लगे ॥
इक एक पैं उठँगत परस्पर मैं बिवाद करन लगे ॥
उछरत बिटप सों बिटप पैं अरु कोऊ भूमि गिरन लगे ॥ १६ ॥
कोउ बेगधर अति भूमि पैं तें उछरि बिटप चढ़त भए ॥
कोउ हँसत गावत पास रोवत पास मैं रोवत भए ॥
कोउ देत पीड़हिं सोर करते मत्त ते कपि-गन सबै ॥
नहिं कोउ मत्त जु नाहिं नहिं कोउ नाहिं जो दर्पित तबै ॥१७॥
इमि पत्र कुसुम बिनष्ट बन द्रुम कपिन खात बिलोकिकै ॥
बारत भयो दधिवक्त्र कपि तिन बानरन कों कोपिकै ॥
वह वृद्ध बानरबीर तर्जित होइ तिन कपि-गनन सों ॥
पुनि कीन मन अति तेजधर रच्छन बिपिन तिन भटन सों॥१८॥
डाँटत सुनाइ कठोर कोउन थप्परन मारत भयो ॥
कोउ सों कलह करिबे लग्यो अरु कोउन समुझावत भयो ॥
वारित भए मद बस रुकत पै बेग नहिं ता त्रास सों ॥

खैंचत भए मिलि ताहि नहिं मन दन्ड-भय बन नास सों॥१९॥

पञ्झटिका।

काट्यो दसनन सों नख बिदारि॥
लातन मूकन सों मारि मारि॥
दधिवक्त्र कपिहिं मृतप्राय कीन॥
अरु मह्‍ा बिपिन फल मधु-बिहीन॥ २०॥

इत्येकषष्ठितमः सर्गः

द्विषष्ठितम सर्ग।

रोला।

बोल्यो हनूमान बानरबर तिन कपि-गन सों॥
"ह्वै मन में अव्यग्र करौ मधु के सेवन कों॥ १॥
जे रोकैंगे तुम्हैं तिन्हैं मैं करिहौं वारन"॥
सुनिके इमि अङ्गद मारुत-सुत को उच्चारन॥ २॥
बोल्यो ह्वै प्रसन्न "पीवैं मधु कों बानर-गन॥
अवसहि कृतकारज मारुत-सुत के ये बैनन॥ ३॥
नाहिं करन जोगहु करनो चहिए पुनि का यह"॥
सुनि अङ्गद के मुख सों बचनहिं सब कपिबर तहँ॥ ४॥
साधु साधु कहि परम मुदित कीनो अनुमोदन॥
बानर-गन बानरबर अङ्गद को करि पूजन॥ ५॥
मधुबन माहिं चले जिमि नदी-बेग तरु के ढिग॥
बल सों हटकि पालकन बन प्रविसे साखा मृग॥ ६॥
लहि अङ्गद-निदेस पटु लखि अरु सीतहिं सुनिके॥
पीवन लागे मधुहिं खात रस-जुत फल चुनिके॥ ७॥

उछरि उछरि कै पुनि तहँपै आए बन पालन ॥
मधु पीवन में लागे ते कपि लगे ठठावन ॥ ८ ॥
लैकै कर में मधुहिं और भरि भरि कै दोनन ॥
होइ मुदित एकत्रित लागे कपि-गन पीवन ॥ ९ ॥
कोउ ठोंकत कोउ मिलिकै खान लगे मधुरे फल ॥
पीकै मधु फेंकत दोनन कोऊ मधु पिङ्गल ॥ १० ॥
कोउ जूठे दोनन इक कों इक लागे मारन ॥
कोउ झूलत तरु मूल समीप पकरिकै डारन ॥ ११ ॥
सोए कोउ मद-मतवारे पातन बिछाइ कै ॥
भए बेगधर मदउन्नत आनन्द पाइ कै ॥ १२ ॥
इकहिं ढकेलत एक परत इक पैं भहराई ॥
गरजत कोऊ कूजि रहे कोऊ हरषाई ॥ १३ ॥
मत्त होइ मधु सों कोउ कपि धरनी पैं सोए ॥
धृष्ट होइ कै हँसत और तिनमें कोउ रोए ॥ १४ ॥
करत और कछु कहत और औरहि समुझाए ॥
रहे और जे बनपालक दधिबदन पठाए ॥ १५ ॥
तेऊ धरषित तिन कपि-गन सों दिसन सिधारे ॥
दरि दीने जङ्घन ऊपर कों कोऊ उछारे ॥ १६ ॥
होइ परम उद्विग्न जाइ दधिमुखहिं सुनायो ॥
लहि हनुमत-निदेस कपि-गन मधुबनहिं नसायो ॥ १७ ॥
दीनो जङ्घन दरि हम लोगन और लोकायो ॥
तबै कोप दधिमुख बनपालक के जिय आयो ॥ १८ ॥
ता मधुबन को नास भयो करिकै अवलोकन ॥
देइ सान्त्वना सान्त किये तिन सबहि बानरन ॥ १९ ॥

"आओ चलैं कीस-गन ढिग जे दर्पहिं धारत" ॥
उत्तम मधु भच्छत तिनकों बल सों मैं वारत ॥ २० ॥
सुनिकै ते बानरबर इमि दधिमुख के बैनन ॥
आए ताके सह पुनि ते जोधा-गन मधुबन ॥ २१ ॥
तिनके मधि दधिमुख इक दीरघ बिटपहिं धारी ॥
दौरत भयो बेग सों सह तिन साखाचारी ॥ २२ ॥
सिला पादपन और पाहनन हाथ उठाई ॥
कोपे तिन कपि-कुंजर गन ढिग पहुँचे जाई ॥ २३ ॥
तिन कपि-गन कों बल सों ते कपि लगे निवारन ॥
पुनि पुनि डाँटत कुपित लगे निज ओंठहिं काटन ॥ २४ ॥
तब बानर-गन कुपित दधिमुखहिं अवलोकन करि ॥
भए धावते हनुमत आदिक परम बेग धरि ॥ २५ ॥
लीने बिटप महाबल महाबाहु वह आयो ॥
कुपित होइ अङ्गद भुजान सों ताहि दबायो ॥ २६ ॥
यह आरज को मम मद-अन्ध कृपा नहिं कीनो ॥
पटकि बेग सों बसुधा पैं ताकों दरि दीनो ॥ २७ ॥
भग्न बाहु उरु मुख बिह्वल तन रुधिर नहाई ॥
महाबीर कपि-कुंजर को छन मुरछा आई ॥ २८ ॥
वह कपिबर कोउ भाँति मुक्त ह्वै तिन कपि-गन सों ॥
निज भृत्यन सों कह्यो आइ एकान्त बचन कों ॥ २९ ॥
"आओ मिलिकै चलैं जहाँ मम स्वामी कपि-पति ॥
बिपुल ग्रीव सुग्रीव अहै निवसत सह रघुपति ॥ ३० ॥
नृप के आगे सबहि दोस अङ्गदहिं लगैहैं ॥
तब वह अति क्रोधी इमि सुनि बानरन नसैहैं ॥ ३१ ॥

महानुभाव कीस-पति मन भायो यह मधुबन ॥
पितृ पितामह को सुदिव्य नहिं प्रापित देवन ॥ ३२ ॥
यह सब कपि गत आयुस लोभी मधु-भच्छन के ॥
इन्हहिं दन्ड दै हनिहैं कपि-पति सह सुहृदन के ॥ ३३ ॥
सुनत न नृप-निदेस बध करि इन दुष्टन केरो ॥
कोप-जन्य यह रोस सफल ह्वै जैहै मेरो ॥ ३४ ॥
महाबली दधिमुख इमि कहि तिन बनपालन सों ॥
उड़ि चाल्यो सहसा सँग लै तिन रच्छक-गन कों ॥ ३५ ॥
छनहिं मात्र में चलिकै पहुँच्यो तहँ वह बनचर ॥
जहँ धीमान दिवाकर-सुत सुग्रीव प्लवगबर ॥ ३६ ॥
लख्यो राम लछिमन अरु सुग्रीवहिं ता थल जब ॥
समथर धरनी पैं अम्बर सों उतरि पर्‌यो तब ॥ ३७ ॥
महाबली दधिमुख कपि तिन बनपालन घिरिकै ॥
तिन सबही को स्वामी ता थल तबै उतरिकै ॥ ३८ ॥
दीन बदन ह्वै रह्यो प्रनाम आइकै कीनो ॥
कपिपति चरनन पैं निज सीस आसु धरि दीनो ॥ ३९ ॥

इति त्रिषष्टितमः सर्गः ।

त्रिषष्टितम सर्ग

रोला।

बानर-पति ने सीस नवावत ताहि निहास्यो।
निज हिय में उद्विग्न होइ यह बचन उचास्यो ॥ १ ॥
"उठो उठो मम पैर परन को का है कारन।
अभय देउँगो तुम्हहिं करो सब साँच उचारन ॥ २ ॥
का भय सों यह हाल मोहिं यह सबै सुनाओ।
सुनन चहत मधुबन के कुसलहिं अबै बताओ" ॥ ३ ॥
महानुभाव कीस-पति सों आस्वाषित ह्वै वह।
बुद्धिमान दधिमुख ह्वै ठाढ़ो कह्यो बचन यह ॥ ४ ॥
"ऋच्छरजा तुमने वा बाली ने कबहूँ नहिं।
बन भोगन की आज्ञा दीन जु बानर नासहिं ॥ ५ ॥
इन कपि-गन सह मैंने तिनको कियो निवारन।
भच्छत पीवत मुदित होइ मन कीन बिचारन ॥ ६ ॥
बन पालन को मान्यो नाहिं बरजनो धरसन।
मम बिचारहू करि न करत हैं सब फल-भच्छन ॥ ७ ॥
कोऊ भच्छत सेस बच्यो है कोऊ पवारत।
बरजन करिबे पै चढ़ाइ कै भृकुटि निहारत ॥ ८ ॥
कियो जतन बहु वारन हित इन पै धरसन करि।
बन सों दियो भगाइ कीस-गनने कोपहिं भरि ॥ ९ ॥
तब बहु बीर बानरन ने इन बानर-गन को।
रिसि सों अरुन नयन करि लगे करन धरसन को ॥ १० ॥

कोउन कों निज अङ्गन अरु हाथन सों मास्यो ।
खैंच्यो कोउ कों अरु ऊपर कों कोउन उछास्यो ॥ ११ ॥
स्वामि रहत तुम्हरे ये सूर गए इमि मारे ।
खात सबै मधुबन ते मन निरभयता धारे" ॥ १२ ॥
ताके ऐसे कीस-राज सों भाषत ताछन ।
महाप्राज्ञ पर-बीर बिनासी पूछ्यो लछिमन ॥ १३ ॥
"का कारन सों बन पालक यह बानर आयो ।
कौन हेतु सों दुखित होइ सब हाल सुनायो" ॥ १४ ॥
महानुभाव लखन के सुनि कपि-पति इमि बैनन ।
बचन-बिसारद करिबे लाग्यो ऐसे भाषन ॥ १५ ॥
"आरज लछिमन भाषत है यह दधिमुख कपिबर ।
कीनो मधु-भच्छन अङ्गद आदिक सब बानर ॥ १६ ॥
बिनु कारज कीने करि सकत धृष्टता इमि नहिं ।
पैठे बन में तौ निस्चिय साध्यो है काजहिं ॥ १७ ॥
आए बारत पालक तिन्हें हन्यो जङ्घन सों ।
तथा बली दधिमुख की गनना कियो न मन सों ॥ १८ ॥
यह मम बन-पति हम सब तहँ नियुक्त करि दीनो ।
कोऊ आन नहिँ ध्रुव हनुमत सिय दरसन कीनो ॥ १९ ॥
छाँड़ि हनुमतहिं साधिसकै नहिँ काज आन है ।
कार्ज-सिद्धिकर अरु मतिमानहुँ हनूमान है ॥ २० ॥
व्यवसायी बलवान बहुस्रुत और प्रतिष्ठित ।
महाबली अङ्गद अरु जाम्बवान नेता जित ॥ २१ ॥
अरु हनुमान अधिष्ठाता किमि कारज होत न ।
निस्चिय अङ्गदादि बीरन ने नास्यो मधुबन ॥ २२ ॥

दच्छिन दिसि कों खोजि अहैं बानर-गन आए ।
हैं मुद सों छाए जो सब मिलि मधुबन आए ॥ २३ ॥
मधुफल भच्छन कीनो श्रौर बिनास्यो है बन ।
बन पालन कों पटक्यो श्रौर ठठायो जङ्घन ॥ २४ ॥
या कारन यह आयो मधुरे बचन सुनायो ।
है प्रख्यात बली दधिमुख या नाम कहायो ॥ २५ ॥
महाबाहु जिय निसिचय आनो सीय लखानी ।
जो सब बानर जाइ पियत हैं मधु मनमानी ॥ २६ ॥
बिनु निरखे बैदेही कों ते सब बानर-गन ।
ता बरदत्त बनहिं कैसे करि सकते धरसन" ॥ २७ ॥
भए प्रसन्न धर्मधर लछिमन सह रघुनन्दन ।
सुनि कपि-पति आनन तें कर्म-सुखद ये बैनन ॥ २८ ॥
महाजसस्वी राम लखन अति भए अनन्दित ।
सुनि इमि दधिमुख के बैनन सुग्रीवहु हरषित ॥ २९ ॥
बनपालक सों पुनि कपिबर इमि बैनहिं भाष्यो ।
"मैं प्रसन्न जो कृत कारज तिनने मधु चाख्यो ॥ ३० ॥
चहिए सहनो कृतकारज तिनके धरसन कों ।
आसु इहाँ सों जाओ तुम रच्छहु मधुबन कों ॥ ३१ ॥

बरवै ।

हनूमान आदिक कपि-गन कों जाइ ।
आसुहि देहु इहाँ पै सबन पठाइ ॥ ३२ ॥

हरिगीतिका ।

मृगराजदर्प हनूमदादिक बानरन सों मैं अबै ।
पूछन चहत सह राम सीता लखन हित उद्यम सबै" ॥
सन्तोस-बिकसित-नयन सिद्धारथ मुदित रघुबर भए ।
कर प्राप्त कारज-सिद्धि लखि अति मुदित कपि-पति ह्वै गए ॥३३॥

इति त्रिषष्टितमः सर्गः

चतुःषष्ठितम सर्ग

रोला।

इमि सुनि कपि-पति सों तब मुदित होइ दधिमुख कपि।
करि प्रनाम राघव लछिमन अरु सुग्रीवहिँ अपि ॥ १ ॥
वह प्रनाम करिकै कपि-पति अरु दोउ रघुबर कों।
सूर बानरन के सह बहुरि उड्यो अम्बर कों ॥ २ ॥
आयो रह्यो जथा तिमि तुरत गयो तात्छन मैं।
उतरि गगन सों धरनी पैं पुनि प्रविस्यो बन मैं ॥ ३ ॥
ताने मधुबन प्रविसि निहारयो बानर बङ्कन।
उद्धत बिमद भए काढ़त मधुकों लघुसङ्कन ॥ ४ ॥
आयो तिनके पास बीर वह बाँधे दोउ कर।
कह्यो मुदित ह्वै अङ्गद सों यह मृदुल बचन बर ॥ ५ ॥
"करो सौम्य नहिँ रिसि वारन सों अपने मन मैं।
रोक्यो कोप-बिबस बिनु जाने रच्छक गन नैं ॥ ६ ॥
पीओ निज मधुकों हो थकित दूर सों आए।
हो बलधर बन के स्वामी जुवराज कहाए ॥ ७ ॥
छमा करो मूरखपन बस जु रोस है कीनो।
जिमि पहिले कपि-पति तुव तात रह्यो बल भीनो ॥ ८ ॥
तैसे तुम हो नहिँ सुग्रीव आन कपिराई।
तुव पितव्य पास मैंने सब बरन्यों जाई ॥ ९ ॥
आवन या थल पैं सब बनचारी कपिगन को।
सुनि इन बनचारिन के सह तुम्हरे आवन को ॥ १० ॥
बन नास्यो सुनि नाहिँ रुष्ट पै अहैं मुदित चित।
तुव चाचा कपिपति सुग्रीव होइ आनन्दित ॥ ११ ॥

"आसु पठाओ तिनकों इमि नृप मोहिं सुनायो"।
सुनिकै अङ्गद दधिमुख-बैन मधुरता छायो ॥ १२ ॥
बोल्यो बाक्य-बिसारद कपिबर तिन कपि-गन सों।
"भयो बिदित यह हाल कदाचित रघुनन्दन कों ॥ १३ ॥
कहत हरष सों यह ता कारन मैं अनुमानत।
करि कारज अब ठहरन उचित न मैं इत जानत ॥ १४ ॥
बनचारी बलधर करि जथा काम मधु-पानहिं।
का अब सेस रह्यो केवल कपि-पति ढिग जानहिं ॥ १५ ॥
सब कपि-गन मिलिकै भाषैंगे मोकों जैसो।
मैं तुम्हरे आधीन काज अब करिहों तैसो ॥ १६ ॥
नहिं अज्ञा दै सकत जदपि जुवराज अहों मैं।
कृतकारज तुम्हरो धरसन बल सों न चहों मैं" ॥ १७ ॥
ऐसे भाषत सुनिकै अङ्गद की बर बानी।
बोले ते साखामृग मन मैं आँनद आनी ॥ १८ ॥
"कपिबर नृप प्रभु ह्वै कै ऐसो कौन बखानत।
ह्वै ऐस्वर्ज-मत्त अहमिति यह सबही मानत ॥ १९ ॥
तुम्हरे सरिस बचन कों नहिं भाषत है कोउ जन।
करत बिनय तुव भावी भाग्योन्नति को सूचन ॥ २० ॥
है हमहूँ सब को उछाह इत सों जानो तहँ।
बीर बानरन के स्वामी सुग्रीव अहैं जहँ ॥ २१ ॥
बिनु तुम्हरे निदेस के एकहु पद बानर-गन।
जाइ सकत कहुँ नहिं यह करत साँचही भाषन" ॥ २२ ॥
बोल्यो अङ्गद सुनि बैनहिं बानरन बखाने।
चलो ठीक इमि कहिकै ते बलधाम उड़ाने ॥ २३ ॥

उड़त भए क्रम सों ते बानर-जूथप भारे।
निरवकास नभ करि पषान जिमि जन्त्र पवारे ॥ २४ ॥
कपिबर अङ्गद अरु हनुमानहिं आगे कीने।
उड़ि अकास में सहसा बानरबर बल भीने ॥ २५ ॥
महानाद करि रहे जलद जिमि पवन लगन सों।
बानरबर सुग्रीव तबै अङ्गद आवन सों ॥ २६ ॥
कह्यो सोक सों तप्त कमलदृग रघुनन्दन सों।
लख्यो देवि ध्रुव भद्र करौ आस्वासित मन कों ॥ २७ ॥
समय बिताइ इहां पै ये सकते नहिं आई।
अङ्गद के हरषहु सों मोकों तात जनाई ॥ २८ ॥
आइ सकत मम पास न करिकै नास काज कर।
महाबाहु अङ्गद जुबराज प्रवङ्गन में बर ॥ २९ ॥
अकृतकृत्य इन सब को यह ऊधम जो होतो।
दीन बदन अरु भ्रान्ति-बिकल-मन यह तो होतो ॥ ३० ॥
पितृ पितामह पुरुषन ने रच्छ्यो है जेही।
मम मधुबन न नासते बिनु निरखे बैदेही ॥ ३१ ॥
कौसल्या सुपुत्रवति भद्र लहौ आस्वासन।
देख्यो देवी कों ध्रुव हनूमान नै आन न ॥ ३२ ॥
ताके सम नहिं क्षम कोउ या कारज साधन में।
है मतिमान सिद्धि अरु मतिहु बायु-नन्दन में ॥ ३३ ॥
उद्यम सूरपनो बहुस्रुतता हू कपिबर में।
जामवन्त अरु अङ्गद हैं नेता जा थर में ॥ ३४ ॥
जहँ हनुमान अधिष्ठाता तहँ नाहिं आन गति।
होहु न चिन्ता-जुक्त अमितबिक्रम तुम सम्प्रति ॥ ३५ ॥

हैं दर्पित अरु उद्धत जो ये सब बनचारी।
करि सकते ऐसो उतपात न काज बिगारी ॥ ३६ ॥
बन नासन मधु-भच्छन सों यह अहै जनायो"।
तब किलकिला सब्द निकटहिं नभ माहिं सुनायो ॥ ३७ ॥
हनूमान के कर्मन दर्पित नाद करत ते।
आवत किस्किन्धा कों जनु सिद्धिहिं बरनत ते ॥ ३८ ॥
सुनिकै बानर- पति तिन बानर-गन के नादन।
दीरघ पुच्छ कँपाइ होत भो परम मुदित मन ॥ ३९ ॥
आए ते कपि-गन हूँ चहत राम-दरसन कों।
आगे कीने अङ्गद कों अरु पवन-सुवन कों ॥ ४० ॥
अङ्गदादि ते सूर भए मद-जुत मुद-पागे।
कियो दंडवत कपिपति अरु राघव के आगे ॥ ४१ ॥
महाबाहु मारुत-नन्दन तब सीस नवायो।
सिय-पातिब्रत और कुसल रघुबरहिं सुनायो ॥ ४२ ॥
लख्यो देवि इमि सुधा सरिस हनुमत आनन तें।
सुनिकै बचनहिं मुदित राम लछिमन सह मन में ॥ ४३ ॥
किय निसिचय कपि-पति कारज-साधक मारुत-सुत।
तिनकों लागे लखन लखन सह मान प्रीति-जुत ॥ ४४ ॥
परम प्रीति सों पूरि राम पर-बीर-बिदारन।
महा मान सों हनूमान कों लगे निहारन ॥ ४५ ॥

इति चतुःषष्ठितमः सर्गः।

पंचषष्ठितम सर्ग ।

रोला ।

चित्र-बिपिन-जुत गिरि प्रस्रवनहिँ तब ते आई ।
महाबली राघव अरु लखनहिँ सीस नवाई ॥ १ ॥
आगे करि जुवराजहिँ करि कपिपति अभिवादन ।
सीता देवी के हालहिँ सब लागे बरनन ॥ २ ॥
रावन-अन्तःपुर में रोध निसाचरि-तर्जन ।
राम माहिँ अनुराग और जिमि नियमहिँ पालन ॥ ३ ॥
राघव के ढिग यह सब बरनन कीनो कपिगन ।
सुनि बैदेही-कुसल राम पुनि कीनो भाषन ॥ ४ ॥
"कहँ पै सीता देवि करत किमि मेरो चिन्तन ।
करो कीस-गन तुम सब अब यह मोसों बरनन" ॥ ५ ॥
ते कपि-गन सुनि रामचन्द्र के ऐसे बैनन ।
सीय-वृत्त-कोबिद हनुमानहिँ लागे प्रेरन ॥ ६ ॥
मारुत-सुत हनुमान बचन तिन कपि-गन के सुनि ।
सीस नवायो सीता को अरु ता दिसि को पुनि ॥ ७ ॥
कह्यो बचन बचनज्ञ जथा सीता को दरसन ।
ता कांचन-मनि को जो दिपति आपुने तेजन ॥ ८ ॥
दै कै रामहिँ पवन-तनय बोल्यो जोरे कर ।
"मैं लङ्घन करिकै सत जोजन आयत सागर ॥ ९ ॥
ढूँढ़त पहुँच्यो जनक-कुमारी सियहिँ लखन हित ।
दुष्ट दसानन रावन की लङ्का नगरी जित ॥ १० ॥
दच्छिन में दच्छिन-सागर के तट पैं जो थित ।

रावन-अन्तः पुर में मैंने सियहिं लख्यो तित ॥ ११ ॥
करत मनोरथ सुन्दरि तुममें सब बिधि दै चित।
निरख्यो निसिचरीन के मधि में पुनि पुनि तरजित ॥ १२ ॥
प्रमदा बन में घोर निसाचर-नारिन-रच्छित।
देवी सुख के जोग बीर तुम्हरे बिनु दुःखित ॥ १३ ॥
रावन-अन्तःपुर-निसिचरि-रच्छित-सुकुमारी।
एक बेनि धरि सब छन चिन्ता करत तुम्हारी ॥ १४ ॥
सोवत भू बिवरन पद्मिनि जिमि हिम परसन सों।
रावन सों मन खैंचे निसिचय किए मरन कों ॥ १५ ॥
तुममें मन दीने देविहिं कोउ बिधि लखि पाई।
मन्द मन्द इक्ष्वाकू-कुल की कीर्ति सुनाई ॥ १६ ॥
नृप-केहरि पुनि धीरे तेहि बिस्वास दिवायो।
पुनि कीनो भाषन अरु सब वृत्तान्त सुनायो ॥ १७ ॥
भई मुदित कपि-पति अरु तुम्हरी मैत्री कों सुनि।
नियम-जुता चारित्र माहिं तुव भक्त सदा पुनि ॥ १८ ॥
इमि मैंने बड़भागिनि जनक-कुमारि निहारयो।
तुम्हरी भक्तिहिं और उग्रतप जाने धार्‍यो ॥ १९ ॥
तुम्हहिं सुनावन हित मोकों पहिचानि बतायो।
चित्रकूट गिरि पर बायस की याद करायो। २० ॥
कह्यो जानकी पवन-तनय राघवहिं सुनाओ।
जो कछु देख्यो इहां दसा मम अब तुम जाओ ॥ २१ ॥
जो यह मनि मैंने रच्छ्यो करिकै जतनहिं अति।
ताहि देहु अरु कहौ हाल सम्मुख बानर-पति ॥ २२ ॥
तुव चूड़ामनि श्री-जुत मैंने धर्‍यो जतन करि।
और मैनसिल के तिलकहिं सुमिरो नर-केहरि ॥ २३ ॥

भाष्यो या जल-जात मनिहिं तुव पास पठावत ।
एहि लखि दुख मैं तुम्हहिं लखन सम आनँद पावत ॥ २४ ॥
एक मास लौं दासरथी जीवन राखौंगी ।
मास गए निसिचरन-बिबस जीवित न रहौंगी ॥ २५ ॥
कह्यो सीय यह धर्मचारिनी अरु कृसबदनी ।
रावन-गृह मैं रहु मृगी जिमि बिकसित नयनी ॥ २६ ॥
रह्यो जथा तिमि मैंने वृत्त अहै बरन्यों सब ।
सागर-तरन-उपाय सर्वथा जिय लाओ अब" ॥ २७ ॥

दोहा ।

लखि आस्वासित नृप-सुतन, रामहिं मनिबर दीन ।
आनुपूरबक पवन-सुत, सिय-बच बरनन कीन ॥ २८ ॥

इति पंचषष्ठितमः सर्गः ।

षट्षष्ठितम सर्ग।

रोला।

इमि सुनिके मारुत-सुत सों श्री दसरथ-नन्दन।
ता मनि कों हिय लाइ लखन सह लागे रोवन ॥ १ ॥
लखि मनिबर कों राम सोक सों ब्याकुल ता छन।
भरिके नैनन नीर कह्यो कपि-पति सों बैनन ॥ २ ॥
"जथा बत्सला धेनु स्रवत पय बच्छ लखन सों।
तिमि मम हृदय द्रवत या मनिबर के दरसन सों ॥ ३ ॥
दीनो मनि मम ससुर ब्याह मैं यह सीता के।
सोभित भयो परम जो मस्तक पैं तब ताके ॥ ४ ॥
जल सों जायो जो यह अति पूजित है मनिबर।
दीनो जज्ञ माहिँ ह्वै परम प्रसन्न पुरन्दर ॥ ५ ॥
लखि या मनिबर कों मनु भयो तात को दरसन।
अरु कीनो जनु मिथिलाधिप अरु सासहिँ निरखन ॥ ६ ॥
मम प्यारी के मस्तक पैं यह मनि छबि छायो।
याके निरखन सों जनु मैने ताकों पायो ॥ ७ ॥
पुनि पुनि बरनो बैदेही ने कहा कह्यो है।
बचन बारि सों मृतप्रायहिँ जैसे सींच्यो है ॥ ८ ॥
लछिमन यासों बढ़िके अहै कौन दुख या छिन।
निरखि रह्यो जो जलज मनिहिँ सीतहिँ पाए बिन ॥ ९ ॥
एक मास जीहै तो बहु सीता मृदुबैनी।
जी न सकत इक छन मैं बिनु ता स्यामल-नैनी ॥ १० ॥
मोकों हूँ पहुँचाओ जहँ मम प्रिया लखाई।

छनहुँ ठहरि नहिँ सकत तासु वृत्तान्तहिँ पाई ॥ ११ ॥
परम भीरु मम सुस्रोनी कैसे निवसत तहँ।
महा भयङ्कर घोर निसाचर-गन घेरे जहँ ॥ ॥ १२ ॥
तिमिर-मुक्त सारदससि के सम ताको आनन।
जलदन सों आवृत सम सोभित होत न या छन ॥ १३ ॥
कहो तत्व सों कपि जिमि सीता कीनो बरनन।
जीहौं मरत करत जिमि औषधि सों असु धारन ॥ १४ ॥

दोहा।

मृदुबैनी भामिनि बिछुरि मोसों जनक-कुमारि।
कहो कहा भाष्यो जियत किमि अतिसय दुख धारि" ॥ १५ ॥

इति षट्षष्ठितमः सर्गः।

सप्तषष्ठितम सर्ग ।

रोला ।

हनूमान सुनि महानुभाव राम सों ऐसे ।
कहन लग्यो सब सीता बरनन कीनो जैसे ॥ १ ॥
"नरबर सीता देवि कह्यो इमि मोसों बानी ।
चित्रकूट गिरि पर की बरनन कीयो चिन्हानी ॥ २ ॥
सुख सों सोइ जानकी तुम्हरे पूर्व उठी जब ।
स्तन-अन्तरहिं बिदार्‌यो उड़ि सहसा बायस तब ॥ ३ ॥
अङ्क माहिँ देवी के बहुरि आप सोए तित ।
पुनि वह पच्छी लाग्यो करन देवि कों पीड़ित ॥ ४ ॥
वह खल अतिसय लग्यो बिदारन पुनि तहँ आई ।
जागे ताके सोनित सों तुम तबै नहाई ॥ ५ ॥
इमि पुनि पुनि ता बायस सों सियने दुख पायो ।
तब देवी ने सुख सों सोए तुम्हहिं जगायो ॥ ६ ॥
उठिकै तुमने जबै बिदारित सियहिं निहार्‌यो ।
क्रुद्ध महाबिषधर अहि सम तब बचन उचार्‌यो ॥ ७ ॥
तुव उरोज-अन्तर केहि नख सों कियो बिदारन ।
कौन करत है कुपित पंचमुख अहि सह क्रीड़न ॥ ८ ॥
इत उत लखि ता बायस कों कीनो अवलोकन ।
भरे नखन मैं रुधिर खड़ो सीता ढिग ता छन ॥ ९ ॥
सुनासीर को सुत वह उड़िबे वारन मैं बर ।
पवन सरिस गति धारी घुस्यो धरनि के भीतर ॥ १० ॥
तबै तरेरत दृगन कोप सों महाबाहु अति ।

ता बायस के ऊपर तुमने कियो क्रूर मति ॥ ११ ॥
आसन सों कुस खैंचि कियो ब्रह्मास्त्रहिं जोजित।
खग ढिग भयो दीप्त कालानल सरिस प्रज्ज्वलित ॥ १२ ॥
बायस पैं प्रदीप्त कुस तुमने तबै चलायो।
वह प्रदीप्त कुस ता बायस के पाछे धायो ॥ १३ ॥
डरिकै ताहि कोऊ अमरन ने नाहिं बचायो।
तीनहुं लोकन घूम्यों पर त्राता नहिं पायो ॥ १४ ॥
आयो पुनरपि तहं तुम्हरेही ढिग अरि-अरदन।
गिस्यो भूमि पैं सरनागत ताकों तुम ता छन ॥ १५ ॥
बध के जोगहु कियो कृपा के बस ह्वै रच्छन।
पै न वृथा करि सकत कबहुं तुम अपने अस्त्रन ॥ १६ ॥
तब तुमने बायस को दहिनो नयन नसायो।
ताने नृप दसरथ अरु तुमकों माथ नवायो ॥ १७ ॥
इमि बचि काक तहां सों अपने भवन सिधारो।
सीलवान अरु अस्त्रबिदन मैं अति बल धारो ॥ १८ ॥
क्यों न करो सन्धान निसाचर-गन पैं अस्त्रन।
नहिं दानव गन्धर्व असुर अरु नाहिं मरुतगन ॥ १९ ॥
ठहरि सकत हैं राम कोऊ तुम्हरे ढिग रन मैं।
जो मम आदर कछु बलवान तुम्हारे मन मैं ॥ २० ॥
हनो आसु निज निसित सरन सों रन मैं रावन।
अथवा लहि भ्राता-आदेस परम तप लछिमन ॥ २१ ॥
का कारन सों करत अहैं मेरो रच्छन नहिं।
सक्तिमान ते धरत पवन पावक सम तेजहिं ॥ २२ ॥
सुर-दुर्धर्षहु करत उपेच्छा हैं क्यों मेरी।
मेरा ही कछु दुष्कृत है बिनु संसय केरी ॥ २३ ॥

ह्वै समरथ हू दोऊ जु मेरी रच्छा करत न ।
सुनि इमि बैदेही के साधु करुन-जुत बैनन ॥ २४ ॥
पुनि महरानी सोँ मैंने इमि बचन उचारे ।
सत्य सपथ रघुनाथ सोक सोँ बिकल तुम्हारे ॥ २५ ॥
रामहिँ दुखित निहारि ताप लछिमन के मन कोँ
कोउ बिधि तुम कोँ लख्यो काल नहिँ यह सोचन को ॥ २६ ॥
भामिनि लखि है दुःखन के अन्तहिँ तू या छन ।
ते दोउ नर-सार्दूल परमतप भूपति-नन्दन ॥ २७ ॥
तुव दर्सन उत्साहित दैहैँ लङ्क जराइ ।
बन्धुन सहित रौद्र रावन रन माहिँ नसाई ॥ २८ ॥
निज नगरहिँ लै जैहैँ तुम्हैँ राम महरानी ।
अब श्री रघुनन्दन पहिचानै जैान चिन्हानी ॥ २९ ॥
देहु ताहि मोकोँ रघुबीर-प्रीति-उपजावन ।
तब सब दिसि लखि देवि बेनि को उत्तम बन्धन ॥ ३० ॥
खोलि बसन सोँ दीनो मोहिँ यह मनि बलवारे ।
ताकोँ कर मैं लैके रघुबर हेतु तुम्हारे ॥ ३१ ॥
सिर नवाइ कै कियो त्वरा लैाटन की पुनि इत ।
जान हेतु उत्साहित लखि मोहिँ महरानी तित ॥ ३२ ॥
बदन बढ़ावत मोसोँ बोली जनक-कुमारी ।
गद्गद भई सींचि मुख आँसु दीनता धारी ॥ ३३ ॥
मम उड़िबेसोँ चकित सोक के बेग दुखित मन ।
भाग्यवान तू कपिबर इमि सिय कियो उचारन ॥ ३४ ॥
महा बाहु पङ्कजलोचन श्री रघुनन्दन कोँ ।
अरु लखिहै जो जसधर मम देवर लछिमन कोँ ॥ ३५ ॥
बोल्यो पुनि मैं सुनि इमि बैनन सीता केरे ।

जनक नन्दिनी आसुहिं चढ़ो पीठ पैं मेरे ॥ ३६ ॥
निन्दा-रहित असित नयनी तोको मैं या छन।
दिखराऊँ लछिमन अरु कपि-पति सह रघुनन्दन ॥ ३७ ॥
बोली तबै देवि यह नाहिं धर्म है कपिबर
जो निज बस रहि आरोहन मैं करूँ पीठ पर ॥ ३८ ॥
भयो परस पहिले जो मेरो निसिचर-तन सों।
करती कहा भयो आपत्ति-काल-प्रेरन सों ॥ ३९ ॥
जाहु कीस-केहरि अब जहँ ते दोउ नृप-नन्दन।
ऐसे कहि कै बहुरि सनेसो लगी सुनावन ॥ ४० ॥
कपिबर केहरि सम दोउ राम और लछिमन सों।
कहो कुसल कपिपति सों अरु सब मन्त्री-गन सों ॥ ४१ ॥
मोहिं उबारैं महाबाहु वह राघव जैसे।
या दुख-सागर सों तुम करो उपायहिं तैसे ॥ ४२ ॥

नरेन्द्र

निसिचर-गन-तर्जन अरु दारुन सोक-बेग यह मेरो
कहो राम सों होवै कपिबर मङ्गलमय पथ तेरो
इमि बिषाद-जुत बैनन महरानी सीता ने भाष्यो
सुनि यह सब ता कुसल-उपायहिं जिय मैं चहिए राख्यो ॥ ४३ ॥

इतिसप्तषष्ठितमः सर्गः।

अष्टषष्ठितम सर्ग।

रोला।

पुनि आदर सों मोसों सिय इमि बैन बखाने।
नर-केहरि तुम्हरे सौहार्द-नेह सों साने ॥ १ ॥
बहु बिधि सों तुम रामचन्द्र को समुझाओ तिमि।
मारि रावनहिं रन मैं आसु लहैं मोको जिमि ॥ २ ॥
जो मन आवै तौ इक दिवस रहौ जैहौ कल।
अरि-अरदन स्रम-रहित होइ बसि कोऊ गुप्त थल ॥ ३ ॥
अल्प भाग्य वारी मेरो तुव पास रहन सों।
या महान दुख सों है होत मोच्छ इक छन कों ॥ ४ ॥
हे बलधारी तुम्हरे या थल पुनि लौटन लों।
बिनु सन्देह अहै संसय मेरे प्रानन को ॥ ५ ॥
तुम्हहिं न निरखन को भय पुनि करि है मोहिं तापित।
दुख पैं दुख पावति दुर्गति-दुख-भागिनि मोहिं इत ॥ ६ ॥
और महा संसय यह उपजत है मम मन मैं।
अहो बीर तेरे सहाय सब बानर-गन मैं ॥ ७ ॥
पार करैंगे किमि दुष्पार परम रत्नाकर।
कपि-गन की सेना अथवा ते दोऊ नृपबर ॥ ८ ॥
सो या दुष्कर कारज के साधन मैं कपिबर।
बोलो समाधान का काज-बिदन मैं हौ बर ॥ ९ ॥
तीनहिं प्रानिन की समरथ सागर लाँघन की।
तुम्हरी मारुत की अथवा बिनता नन्दनकी ॥ १० ॥

तुम्हहीं एक अहौ छम या कारज साधन मैं ।
अहौ पात्र तुम्हहीं जसदायक जसहिं लहन मैं ॥ ११ ॥

दोहा ।

सब सेना के सहित रन, मैं रावनहिं नसाइ ।
होय जसस्कर राम जो, पुर लौटैं जय पाइ ॥ १२ ॥

रोला ।

वह निसिचर मोहिं छल सों तिनके भय सों बनसों ।
जिमि हरि लायो तिमि नहिं चहिए रघुनन्दन कों ॥ १३ ॥
पर-बल-अर्दन भरि निज सेना लङ्का माहीं ।
होय जोग तिन के जो मोहिं राघव लैजाहीं ॥ १४ ॥
बिक्रम वान सूर के पुनि अनुरूप जु होई ।
हे बानरबर तुम करिहौ अब जतनहिं सोई ॥ १५ ॥
भरे अर्थ अरु हेतु स्रवन करि सीता-बैनन ॥
बहुरि करन लाग्यो बिनीत बचनहिं मैं भाषन ॥ १६ ॥
देवि बानरन की सेना को स्वामी कपिबर ।
सत्ववान सुग्रीव कीन निसिचय तुव हितकर ॥ १७ ॥
ताके बिक्रमवान सूर अतिसय बलधारी ।
मन-संकल्प सरिस गतिधर कपि आज्ञाकारी ॥ १८ ॥
रुकत नाहिं गति जिनकी तिरछे नीचे ऊपर ।
होहिं न दुखित महान कर्महूं माहिं तेजधर ॥ १९ ॥
गिरि सागर सह कई बार तिन उत्साहिन सों ।
भई प्रदच्छिन भूमि पवन-पथ-अनुसारिन सों ॥ २० ॥
मो सम मोसों बढ़िके हैं तहँ सब साखामृग ।
मोसों हीन नाहिं कोऊ कपि-पति के ढिग ॥ २१ ॥

दोहा

मैं आयो इत काह तिन, बलवानन की बात ।
बड़े न भेजे जात हैं, छोटहि भेजे जात ॥ २२ ॥
वृथा अहै परिताप अब, देवि सोक तुव जाइ ।
एक छलांगहिं माहिं कपि-जूथप पहुँचैं आइ ॥ २३ ॥

रोला ।

भानु चन्द सम उदित पीठ मम आरोहन करि ।
ऐहैं तुव ढिग बहु सेना सह ते नर-केहरि ॥ २४ ॥
लखिहै आसुहि सिंह सरिस अरिघाती रघुबर ।
अरु लङ्का के द्वार उपस्थित लखन धनुर्धर ॥ २५ ॥
सरिस सिंह सार्दूल दन्त नख आयुध धारे ।
लखिहै वारन-पति सम बहु बानर बलवारे ॥ २६ ॥
सैल जलद सम लङ्का मलय-सिखर पर आई ।
नदत मुख्य कपि-गन को रव इत परिहि सुनाई ॥ २७ ॥
करि बन-बास लैाटि अपने सह अरि-अरदन कों ।
लखिहै अवध माहिं अभिसेकित रघुनन्दन कों ॥ २८ ॥
तबै इष्ट अरु मङ्गल-जुत मेरे बैनन सों ।
भई प्रसन्न अदीन-भाषिनी सीता मन सों ॥ २९ ॥
धार्‍यो सान्ति हिये मैं श्री मिथिलेस-कुमारी ।
तुम्हरे परम सोक सों अति पीड़ित तुव प्यारी ॥ ३० ॥

इत्यष्टषष्ठितमः सर्गः ।

इति सुन्दर काण्डं सम्पूर्ण ।

DBA000009716HIN